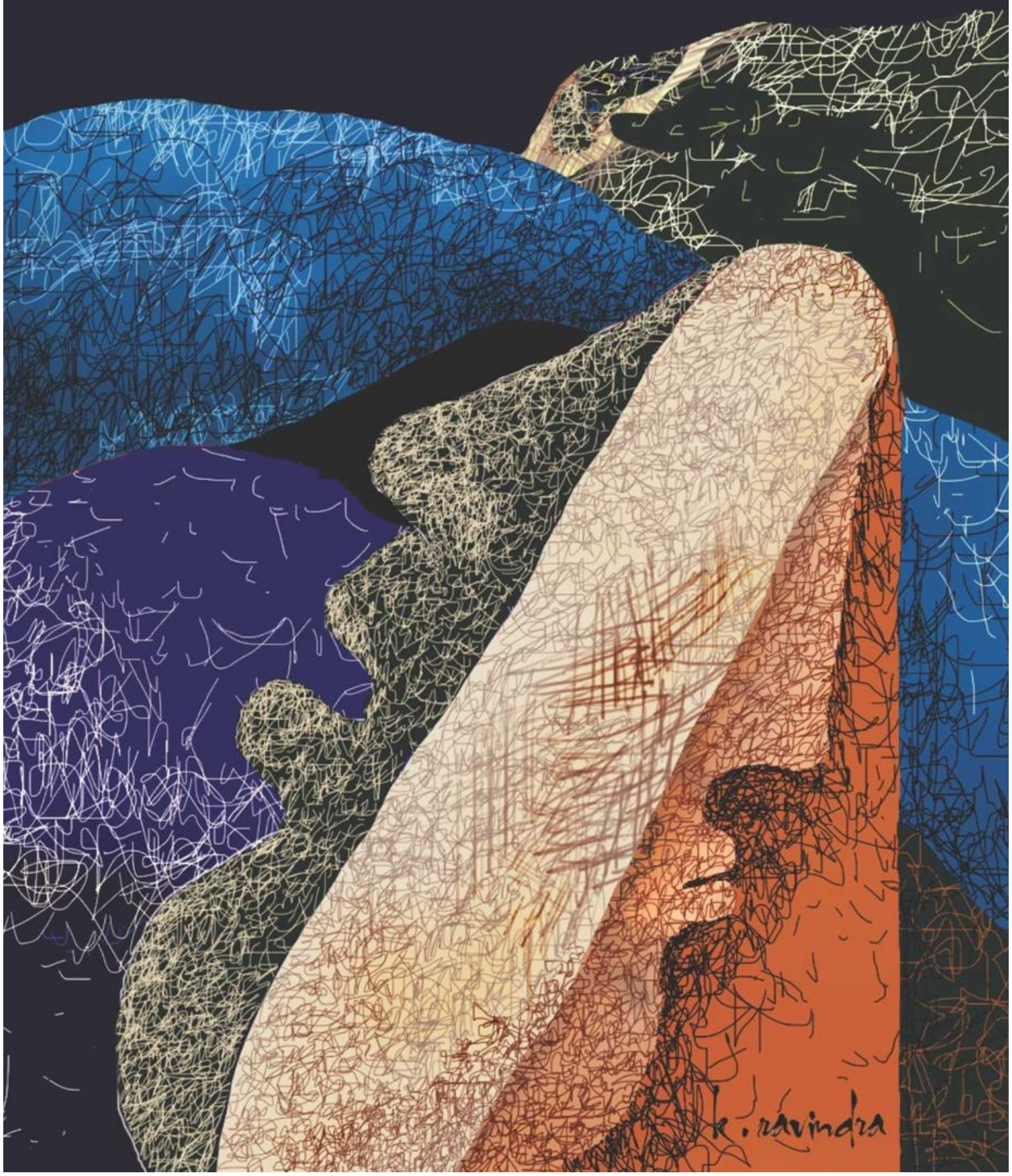
विभाजन की त्रासदी

संपादन एवं अनुवाद

देवी नागरानी



विभाजन की त्रासदी

विभाजन की त्रासदी

(सिंधी कहानियों का हिंदी अनुवाद)

संपादन एवं अनुवाद

देवी नागरानी

हिंदी साहित्य निकेतन

16, साहित्य विहार, बिजनौर (उ.प्र.)

ISBN 978-93-80916-99-6

प्रकाशक : **हिंदी साहित्य निकेतन**
16 साहित्य विहार
बिजनौर (उ॰प्र॰) 246701
फ़ोन : 01342-263232, 07838090732
ई-मेल : hindisahityaniketan@gmail.com
वेब साइट : www.hindisahityaniketan.com
टाइप सैटिंग : अनुभूति ग्राफ़िक्स, बिजनौर (उ॰प्र॰)
आवरण : कु॰ रवींद्र
शब्द-संयोजन : नीलिमा खरे
मुद्रक : आदर्श प्रिंटर्स, दिल्ली 32
संस्करण : प्रथम 2017
मूल्य : तीन सौ रुपए

VIBHAJAN KI TRASADI
ED. AND TRANSLATED BY DEVI NAGRANI
Rs. 300.00

बँटवारे से त्रस्त शरणार्थियों की कथा-व्यथा

सिंधी, सिंधु घाटी सभ्यता के मानव-जाति के वंशज हैं। सिंधु नदी के तट पर रचित वेदों-ग्रंथों की महान और आदर्श संस्कृति और सभ्यता हमारे ही पूर्वजों की देन है। वैदिक-संस्कृति की नींव रखनेवाले सिंधु सभ्यता के ही लोग हैं।

संसार के इतिहास में कठिन-से-कठिन परिस्थितियों में इतनी बड़ी संख्या में मानवीय पलायन नहीं हुआ, जैसा भारत-विभाजन के वक्त हुआ। यह अपने आपमें एक अजीबो-गरीब इतिहास है, जिसने जुड़वाँ जख्मी देशों को जन्म दिया और एक सिंधु सभ्यता की संपूर्ण जाति को दर-ब-दर की ठोकरें खाने को छोड़ दिया, जो संसार की प्राचीनतम गौरवपूर्ण संस्कृति की जन्मदाता और वारिस है।

बस जिसका दर्द वही जाने। कई दिलजले शायर व लेखकों की कलम से दर्ज अभिव्यक्ति उन रिसते हुए जख्मों को अपनी भाषा से परिभाषित करती रही है—

उस शिकारी से ये पूछो पर क़तरना भी है क्या
परकटे पंछी से पूछो ऊँचा उड़ना भी है क्या?

आशियाना ढूँढ़ते हैं, शाख़ से बिछड़े हुए
गिरते उन पत्तों से पूछो, आशियाना भी है क्या?

—देवी

विभाजन का दौर मानवीय इतिहास का एक ऐसा वक्त रहा, जिसमें विषम परिस्थितियों की आँधी शांति, सद्‌भावना, पारस्परिक संबंध और मानवीय मूल्यों के कोमल हरे-भरे अंकुरों को उजाड़कर नष्ट करती रही। प्रताड़ना के रेखांकित किए हुए चिह्न वक्त की दीवारों में चुने जाने के बावजूद रह-रह कर सिसकियाँ भरते रहे हैं, अपने वजूद की तलाश में खामोश खंडहरों में भटकते रहे हैं। इकबाल का यह शेर इसी दशा को परिभाषित कर रहा है—

ढूँढता फिर रहा हूँ मैं, इकबाल अपने आपको
आप ही गोया मुसाफिर, आप ही मंजिल हूँ मैं।

इस बँटवारे के परिणामस्वरूप विश्व के इतिहास में इतनी संख्या में लोगों का विस्थापन एवं पलायन कभी नहीं हुआ था। मानवता की दहलीज पर नारी त्रासदी की उत्पीड़िता, विस्थापिता, अपहृता, बलात्कृता एवं नारियों की अतृप्त आत्माओं की प्रताड़ना ने आज तक उन घावों पर मुकम्मिल मरहम नहीं लगाया है।

ऐसा परिवर्तन एक खतरनाक षड्यंत्र की तरह आता है या लाया जाता है। यह ऐसे धीमे जहर की तरह है कि इंसानियत मृत्यु की तरफ तो बढ़ती है, लेकिन आदम उसे विकास के नाम पर आगे और आगे ले जाने में प्रयासरत रहता है। विकास के पुराने और नए मूल्यों में कोई संधि नजर नहीं आती। पहले समाज के लोगों के भले के लिए प्रयत्न हुआ करते थे, अब हर कार्य को करने के पीछे एक बौद्धिक आधार होता है। अब वे प्रयास, सियासत की चौखट पर व्यापार और सौदेबाजी की दुकानें सी लगने लगे हैं।

उस दौर और इस दौर के बीच से यादों की टँगी हुई भद्दी दीवार कभी नहीं हटी। आज भी लेखक अपनी कलम की नोक से कभी कविता, कभी संस्मरण या कहानी-नावेल का स्वरूप देकर उसे दर्ज करने को तत्पर रहता है—उस लेखन में कहीं-न-कहीं उस दर्द की परछाइयाँ, विभाजन के पहले और बाद की तस्वीर सामने ले आता है।

यह उस समय की बात है, जब सिंधी शरणार्थी बनकर अपनी अना की धज्जियाँ उड़ते हुए देखकर भी कुछ न कर सके। कितने ही खानदानों के जलते चराग बुझ गए। कई नारियों को कत्ल करके अपने ही घर-आँगन में दफन किया गया। अपनी धरती माँ का कर्ज चुकाने की खातिर, न्याय के नाम पर यह अन्याय होने लगा। इस प्रलयकाल के पश्चात् बर्फ की तरह जमा हुआ यह एहसास चट्टान बनकर ठहर-सा गया है कि भारत की आजादी पर बलि के बकरे बने सिंधी अपनी जान की आहुति देते हुए मौत से होली खेल रहे थे।

इस देश और उस देश के बीच में बँटी हुई जिंदगी से समझौता करना एक मजबूरी रहा, वर्ना कौन अपने देश की आजाद फिजाओं को छोड़कर, अपनी जड़ों से उखड़कर नवनिर्माण की राह का पथिक बनना चाहेगा?

यही दर्द सीने में लिए हुए आज की कहानी जीवन के बिलकुल निकट आ गई है। उसमें मानव के हृदय का एहसास धड़कता है, जिसमें शामिल हैं—

हालात की साजिशी, मुफलिसी, बेरोजगारी, अमानुषता, कहीं खुशहाली, कहीं बेबसी, बीमारी, दरिंदगी, उसूलों की बलि, हद-सरहद पर फसादों के जंगल! प्यार नफरत की फस्ल से पनपती इंसानियत व मजहबी टकराव के बारे में पढ़कर आम आदमी अपने ही भाई-बंधुओं के दुख-सुख का परिचय पाता है। इसलिए कहानी का रूप भी गतिशील है, वह विस्तृत, विकसित एवं परिवर्तित स्वरूप में सामने आ रही है।

सिंधी कहानी के वजूद में अजाब की दास्ताँ लंबी है। विभाजन का दर्द नसों में लहू बनकर दौड़ रहा है। लेखकों की कहानियों में जो देश, काल और भाषा की सारी दूरियाँ हैं, उन सब फासलों को उलाँघती आ रही है।

इस संग्रह में शामिल कहानियाँ कहीं-न-कहीं उस याद की धुँधली तस्वीर सामने ले आती हैं, जब दर्द को ही दारू समझकर पी लेने के सिवा कोई और चारा बाकी नहीं रह जाता। लेखक अपने-पराये दर्द से परे कुछ भावनात्मक संधि की चौखट पर इन किरदारों के माध्यम से उस रिसती हुई पीड़ा को अभिव्यक्त करता रहा, जो मानव के जीवन का हिस्सा बनी। वे दर्द की लकीरें आज भी कहीं न कहीं दिल की दीवारों को खुरेचकर बरबस उन जिए हुए पलों की याद दिलाती हैं। देखा जाय तो विभाजन देशों का हुआ है, दिलों की लकीरें अब भी जुड़ी हुई हैं!

मैं हिंदी साहित्य निकेतन के निदेशक श्री गिरिराजशरण जी की तहे दिल से शुक्रगुजार हूँ, जो मेरे पहले संग्रह 'पंद्रह सिंधी कहानियाँ' के बाद सिलसिले को कायम रखते हुए 'दर्द की एक गाथा' की सत्रह कहानियों में सिंध के लेखकों के भाव-बीज हिंदी की सब्ज जमीन में बो पाए। और अब उसी 'विभाजन की त्रासदी' बीस कहानियों के रूप में आपके हाथों में है।

मेरी दिली ख्वाइश है कि सिंधी साहित्य हिंदी के अदब और अदीबों के बीच पनपता रहे और हम बिन प्रांत के सिंधी भाषी एक जुट होकर अपनी भाषा और पुरातन साहित्य को हिंदी साहित्य की धारा में सुरक्षित रख पाएँ। इस संग्रह में योगदान देनेवाले साहित्यकारों की कहानियाँ उनकी अनुमति से शामिल हैं! बस अब आपकी प्रतिक्रिया के इंतजार में।

आपकी अपनी

देवी नागरानी
323 Harmon cove towers,
Secaucus, NJ 07094,
dnangrani@gmail.com

कहानी-क्रम

कर्ज की दरख्वास्त

लाल पुष्प

अब तक शायद हेड क्लर्क की नजर उस पर नहीं पड़ी थी। लगता है जैसे वह सारा वक्त दीवारों से बातें करता रहा हो।

'प्लीज सर', उसने फिर नए सिरे से अपनी बात कहनी चाही।

'एक मिनट ठहरो' हेडक्लर्क कहकर फिर फाइल्स में गुम हो गया।

'जरूरी केस है।'

वह फैसला नहीं कर पाया कि कहे गए शब्द उसके लिए कहे गए थे या फकत हवा में उछाले गए थे। जाहिर है, और अगर उसे शक है तो वह बेवकूफ है। उसको अभी और इंतजार करना पड़ेगा। उसने चारों ओर देखा, सबकी ओर देखा, हालाँकि उसे पूरा विश्वास था कि किसी का भी ध्यान उसकी ओर नहीं गया है, उसकी को हुए लफ्जों को सुनना तो दूर की बात है, इसके बावजूद उसके वहाँ होने और अपनी कही बात अनसुनी हो जाने की बात खटकती रही।

उसे वक्त का होश नहीं रहा, बस हेडक्लर्क के सामने अड़ा रहा।

'आज मैं बहुत बिजी हूँ।' उसने सुना और कहना चाहा कि–अगर यह सच है तो फिर सुबह पूरा एक घंटा केफेटीरिया के एक कोने में मिसेज देशपांडे के साथ चाय की चुस्कियाँ कौन भर रहा था, और लबों के बीच में वह वाहियात मुस्कराहट किसकी थी?

लेकिन उसने कुछ नहीं कहा, उसे पता था कि उसका बोलना नाजायज है। कुछ बातें सिर्फ सुनने के लिए और सोचने के लिए होती है। वैसे भी भला वह हेडक्लर्क को कैसे बता सकता था कि उसमें और क्लार्के में कोई फर्क नहीं है। सवाल यह है कि वह खुद भी ऑनड्यूटी था और केफेटीरिया के सबसे दूर कोने में बैठकर हेडक्लार्के की वाहियात मुस्कुराहट को पूरा घंटा जाँचता रहा, इसमें से साफ जाहिर है कि वह खुद हेडक्लार्क से पहले आया था और देर से

निकला था।

'तुम्हें कुछ कहना है?'

'मैं अपनी दरख्वास्त के लिए आया हूँ।'

'किस बात की दरख्वास्त?'

'प्रविडेंट फंड-कर्ज की!'

'दरख्वास्त कब दी थी?'

'सर, आपको यह तो मालूम है, हफ्ता पहले आपने कहा था कि सुपरिंटेडेंट की सैंक्शन लेकर अकाउंट्स ऑफिस में भेजेंगे।'

'तो क्या अभी तक नहीं भेजी?'

'सर, कल मैं अकाउंट्स ऑफिस गया था, इनचार्ज ने बताया कि ऐसी कोई दरख्वास्त उनके हाथों में नहीं आई है।'

'डिस्पैच क्लर्क से जाँच कर लेते?'

'सर, वह मैटरनिटी-लीव पर है।'

'तो उसकी जगह पर दूसरा क्लर्क होना चाहिए। क्या तुम यह कहने की कोशिश कर रहे हो कि डिस्पैच क्लर्क के बिना काम चलाना मुमकिन है।'

'यह ठीक बात है सर, पर पता पड़ा कि वह आज से छुट्टी पर गई है और उसकी जगह पर किसी और क्लर्क को मुकर्रर करने के अभी ऑर्डर नहीं निकाले गए हैं।'

'तो इसमें मैं क्या कर सकता हूँ, कहो....?'

'सर, आपने हफ्ता पहले अंजाम किया था कि आप देखेंगे कि मुझे एक हफ्ते के अंदर कर्ज मिले। आपको पता है कि मेरी हालत, मेरा केस बिलकुल जेन्युन है।'

'ऐडमिनिसट्रेशन को इस बात से कोई वास्ता नहीं कि तुम्हारा केस जेन्युन है कि नहीं। मुख्य बात है कि लागू फार्म भरकर उसके साथ सर्टिफिकेट पेश किया गया है या नहीं, तुम्हारी हालत में...!'

'हाँ, सर, मैंने जरूरी फार्म भरे, उसके साथ अपने फैमिली डॉक्टर का सर्टिफिकेट भी पेश किया है कि मेरी पत्नी को इस जहीन इलाज की जरूरत है और उसके लिए दवाओं वगैरह का बिल हमको भरना है।'

हेडक्लर्क ने कहा—'अच्छा तो तुम थोड़ी देर ठहरकर आ जाओ, तब तक मैं इस फाइल से फारिग हो जाऊँ।'

उसने कहना चाहा—'सर, हफ्ता पहले भी आपने...'

लेकिन उसने कुछ न कहा, उसे पता था कि उसे कुछ भी नहीं कहना है। कुछ बातें सिर्फ सुनने के लिए होती हैं और सोचने के लिए। जबकि कुछ घड़ियाँ ऐसी भी आती हैं जब वह सोचता है। आखिर बात भी गैरजरूरी है, सोचना गैरजरूरी–बेमानी!

वह वहाँ से उठकर बाहर निकला, वक्त जो गुजारना था। कितना? थोड़ा! लेकिन वह थोड़ा न जाने कितना होता है। कहनेवाला अपने हिसाब से वक्त को माप लेता है, मजे की बात यह है कि खुद उसे अपनी 'माप' पूरी तरह से पता नहीं होती।

और फिर भी हम हर लफ्ज के माइने समझने में मात खा जाते हैं! 'माइने' कौनसे लफ्ज के होते हैं? गौर करने पर यह बात बेकार लगी। रोजमर्रा के गर्दिशी जीवन की तरफ हम इतने ईमानदार हैं कि उस धुआँधार सच की तरफ बेईमान बन गए हैं।

'वह', जहाँ नहीं जाना था, वहाँ भी गया कि हेडक्लर्क का कहा वह 'थोड़ा' पूरा हो जाए। वहीं खड़े सभी ताज़ा अखबारों की हेडलाइंस पढ़ लीं। हालाँकि यह बात उसे बिलकुल अच्छी नहीं लगती थी। उन खबरों में और ऑफिस की फाइलों में न जाने कहाँ और कसी समानता महसूस होती रही। वह हर जगह गया, और हर कहीं खड़ा रहा। जितनी जगहों पर वह गया, जितना वक्त खड़ा रहा, उससे उसे यकीन होने लगा कि काफी वक्त गुजर गया होगा और हेडक्लर्क का वह 'थोड़ा' कब का पूरा हो गया होगा। यकीन करने के लिए जब उसने प्लैटफार्म पर लगे राक्षसी घड़ियाल की तरफ देखा तो वह भीतर से बिलकुल खाली हो गया, सिर्फ और सिर्फ दस मिनट गुजरे थे।

वक्त सिर्फ केफिटीरिया में गुजरता है, यही सोचकर वह भीड़ के होते हुए भी एक कोने में बैठने का स्थान पा गया। उसने जान–बूझकर कॉफी का ऑर्डर देर से दिया। जब दिया, और कॉफी आई तो वह जान–बूझकर छोटी–छोटी चुस्कियाँ बहुत ही धीरे–धीरे लेने लगा। यह सारा वक्त वह खुद को इस सोच से अलग न कर सका कि दरख्वास्त के साथ डॉक्टर का सर्टीफिकेट उसने अच्छी तरह से लगाया था या नहीं, कहीं पिन, हालाँकि उसने अच्छी तरह से टाँकी थी, कहीं गिर तो नहीं गई...क्योंकि उस हालत में उसे फिर नए सिरे से उसी कर्ज के लिए उन्हीं हालात से गुजरना होगा। वैसे भी यह बात अनहोनी नहीं है, कितनी ही बार कितनों को उस छोटी–सी पिन ने ऊपर–नीचे करवाया है। ताजा मिसाल कपूर की है, बिचारे ने अपनी शादी के लिए कर्ज की दरख्वास्त

की थी, महीने के बाद उसे ऑफिशियल लैटर मिला, तब जब शादी में सिर्फ छः दिन बाकी बचे थे, यह कहते हुए कि–'तुम्हारी दरख्वास्त वापस भेज रहे हैं। माँगे हुए सर्टीफिकेट के साथ फिर से पेश करो।'

कपूर भी इरादे का पक्का था, पढ़े हुए जासूसी नॉवल मददगार साबित हुए। बड़े अफसर की ऑफिस के बाहर उधम मचाया–'अगर मैंने सर्टीफिकेट अटैच नहीं किया तो फिर दरख्वास्त-फार्म के कोने पर टाचनी (पिन) के निशान कहाँ से आए?'

नतीजे में हेडक्लर्क का हुक्म मिला, तुरंत जाँच करो, सर्टीफिकेट ट्रेस करो, फिर मेरी टेबल पर सबमिट करो, सिग्नेचर लेकर खुद अकाउंट्स ऑफिस में जाओ, रू-ब-रू कर्ज पास कराओ। मुख्तसर में मतलब यह है कि मिस्टर कपूर को चौबीस घंटों में कर्ज के पैसे मिलने चाहिए। ऑफिसर ने यह भी जोड़ा, इस राट्न कंट्री में शादी फिर नहीं होती, कि किसी की शादी के कर्ज की दरख्वास्त ऐसे ...।

उसने खुद को फटकारा कि वह कपूर के जैसा स्मार्ट क्यों नहीं हो पाया। अच्छे साहित्य और गंभीर किताबों की बजाय जासूसी नॉवल उसने क्यों नहीं पढ़े। अगर वो ऐसे करता तो आज इतना हौसला और इतनी दहशत समेट पाता! हो न हो, फर्ज करो अब यहाँ से उठने के बाद, ऑफिस में हेडक्लर्क के सामने खड़ा होकर वही हालात पैदा करे तो भी कपूर की तरह शायद ही हौसला और दहशत दिखा पाए।

शायद
शक है
नहीं
यकीन है
नहीं

अगर, उस हालत में, वह चिल्लाना चाहेगा तो उसकी आवाज नहीं निकलेगी, हाथ हिलाकर रह जाएगा वह। बहुत बोलना चाहेगा, पर खामोश रह जाएगा। दूसरी हालत में अंट-शंट बोल देगा बहुत ही तेज रफ्तार के साथ फिर अचानक रुक जाएगा, राह गवाँ बैठेगा जैसे स्पीड में दौड़ती ट्रेन अचानक पटरियों से उतरकर ढेर हो जाए... या फुग्गे में गैस जल्दी-जल्दी भर दी जाए और फुग्गा फूलता फूलता अचानक ही फुस करके फट जाए...या...!

हेड क्लर्क उसे देखकर मुस्कराया और कहा–'क्यों बहुत देर लगा दी?'

तो उसका चेहरा चमक उठा। चेहरे पर तनी हुए रेखाएँ ढीली पड़ गईं।

'तुम्हारी दरख्वास्त मिल गई है।'

'ओह! थैंक यू सर!'

'अब एक काम करो!'

'यस सर!'

'तुम तुरंत मिस्टर गुजराल से मिलो।'

'गुजराल से क्यों सर!'

'जैसे मैं कह रहा हूँ, करो!'

'ओ॰के॰ सर!'

'हाँ यह लो, अपनी दरख्वास्त उसके पास ले जाओ!'

'सर...'

'जैसे कह रहा हूँ वैसे करो, तुम्हारी भलाई के लिए है।'

'दरख्वास्त में कोई गलती हुई है?'

'नहीं, तुम्हारी कोई गलती नहीं है।'

'सर, मुझे खुलासा करके बताएँ कि दरख्वास्त में किसकी गलती है और कौन-सी गलती है। अगर किसी और की गलती है तो, दूसरी किसी की इसलिए कह रहा हूँ कि आपने खुद कहा कि गलती है, पर मेरी नहीं है। पर अब तो यह जाहिर है कि कहीं न कहीं किसी की कोई न कोई गलती अवश्य है, मुख्य बात यही है, मेरा मतलब है कि गलती है फिर चाहे वह किसी से भी हुई हो। पर मैं खुद पर दोष लेने को तैयार हूँ, चाहे उसमें मेरा कोई भी दोष न हो, मुझे पैसों की सख्त जरूरत है। मैं आपको पहले ही बता चुका हूँ, मेरी पत्नी का इलाज और जारी रखना चाहिए, यह डॉक्टर का कहना है। उसे और सुइयाँ लगवानी हैं सुइयाँ, दवाइयाँ, गोलियाँ, टॉनिक...आपने हफ्ता पहले कहा था!'

वह चुप हो गया, और उसे यह लगा कि पहले वह समझ तो जाता कि हेडक्लर्क या उसका गुजराल क्या कहता है। इस बार उसे लगा कि सबकी, या सबमें से किनकी नजरें उसकी तरफ उठीं। इतनी बकवास करते वक्त, खुद को बेवकूफ समझते हुए खुद को कोसा उसने।

मिस्टर गुजराल। गोरे बदन वाला पंजाबी पान चबा रहा था।

'मिस्टर गुजराल... '

'यस मिस्टर, आओ बैठो।'

'मुझे मिस्टर सेठ ने भेजा है।'

'इन वॉट कनेक्शन?'

'मेरी इस दरख्वास्त के बारे...'

उसने दरख्वास्त मिस्टर गुजराल के आगे रखते हुए कहा—'मिस्टर सेठ ने शायद आपसे इस बारे में पहले ही बात की है।'

'मुझे कुछ याद नहीं आ रहा है, पर तुम कहो मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूँ।'

'मेहरबानी करके गाइड कीजिए कि इस दरख्वास्त में क्या गलती है?'

फिर कुछ रुककर—'गलती है जरूर, मिस्टर सेठ ने मुझे बताया है। हालाँकि मेरी कोई गलती नहीं है, पर फिर भी गलती है जरूर, सिर्फ यह पता नहीं पड़ रहा है कि इसमें क्या गलती है और किसकी गलती है?'

वह फिर लंबी साँसें लेने लगा, उसे लगा कि वह अपनी बात अच्छी तरह से समझा नहीं पा रहा है। हालाँकि समझाने जैसी उसमें कोई बात भी नहीं थी। पर उसे यह जरूर लगा कि उसे बताने के लिए मनचाहे शब्द नहीं मिल पा रहे हैं।

गुजराल ने दरख्वास्त देते हुए कहा—'बराबर इसमें गलती है, उसे जाइजा लेते हुए कहा।'

'मिस्टर सेठ ठीक ही कह रहे थे।'

'यह दरख्वास्त नहीं चलेगी।'

'मिस्टर गुजराल...'

'यह फार्म रद कर दिया गया है।'

'मुझे मालूम न था।'

'ऐडमिनिस्ट्रेशन ने इस कर्ज को पाने के लिए नया फार्म बनवाया है।'

'कौनसा!'

'भाई, उसका तो मुझे भी पता नहीं है।'

उसने बस उठकर वहाँ से चले जाना चाहा।

गुजराल ने फिर कहा—'मैंने सच में वह नया फार्म देखा तक नहीं है। मैं जानना चाहता हूँ कि किसी ने भी देखा है क्या? फिर भी मुझे विश्वास है कि इस फार्म पर तो दरख्वास्त नहीं चलेगी। अभी कल ही भेजी हुई सब अर्जियाँ अकाउंट्स ऑफिस से लौट आई हैं। हर एक अर्जी के नीचे 'फुट नोट' लगा हुआ है—'मेहरबानी करके नए फार्म पर अर्जियाँ भेजी जाएँ।'

कोई फायदा नहीं था, उसने सोचा—कोई भी सवाल उठाने से...और वह तत्पर उठकर वहाँ से जाना चाहता था।

गुलशन कौर

देवी नागरानी

इसे मैं क्या नाम दूँ—कथा, आत्मकथा, स्मरण, संस्मरण या शब्दों का बुना हुआ एक नाजुक रिश्तों का जाल कहूँ, जो वक्ता के अनुसार अपनी सुविधा से बुन लिया जाता है या उधेड़ लिया जाता है। जब गुलशन कौर से उसकी यादों की चादर में टाँके हुए इन सितारों की बात सुनी तो सोचा—दुख-सुख, जुदाई-मिलन के इस भावनात्मक संगम को जबान दूँ। सुनते हुए मन में यही आया, जैसे रिश्ते-नाते सौदागर के सौदे हो गए हैं, बिकाऊ या खरीदे हुए। बिकाऊ-जिस का नाता खरीदार के साथ बन जाता है या यूँ कहें बँध जाता है, क्योंकि वह मालिक होता है और खरीदे हुए वजूद का हकदार, हर मामले में उसे इस्तेमाल करने का हक उसे हासिल होता है, काम लेने का, अपने अरमानों को पूरे करने का, हर मनचाहे इस्तेमाल करने का!

और उसी दौर में...!

धरती की दरारों के साथ दिलों में दरारें पड़ती रहीं, बढ़ती रहीं, चौड़ी होती रहीं। हिंदू-सिख-मुसलमान सभी एक दूसरे के दुश्मन बन गए, लूटमार का हाहाकार मचा, जिसमें स्वाहा होती रही औरत की अस्मत। खुले मैदानों में बेसहारा, बेछत लोग बैठे हुए देखे जाते। एक देश अब दो में विभाजित हुआ था। कम्युनल हारमनी के नाम पर जैसे एक-दूसरे को मार-धाड़ कर अपने-अपने मन की भड़ास निकाल रहे हों।

ऐसे वक्त में...!

जरीना आपा के मुँह से सुना कि मुसलमान घर की एक लड़की की शादी में नाच-गाने में भंग डालते हुए कुछ सिख तलवारें लेकर टूट पड़े, यह पता ही नहीं चला कि किसका सर किधर गिरा, और किसका धड़ किधर गिरा। बस खून के रेले बह चले।

ऐसे में...!

माएँ चीखती, बिलखती रहीं, और कुछ तो अपने बेटों को दूध की कसम देकर उन्हें मार डालने के लिए मजबूर करतीं, या उन्हें किसी कुएँ में फेंक देने के लिए बाध्य करतीं। सामने यह आया कि मुसलमान भी भड़के हुए थे और उनके घात करते हुए नहीं जानते थे कि उनके वार के सामने कौन आया? सिख-हिंदू या उनका ही कोई मुसलमान भाई। सिख औरतों को घर से घसीटकर बालात्कार के बाद घर के बंधुओं के सामने वार से तमाम कर दिया जाता। ऐसे बेदर्द ह्रदयविदारक मंजर देखकर..., कोई क्या करता, क्या चीखता! फकत दर्द को दिल में दबाकर आज नम आँखों से वही तमाशाई बंधु बताते हैं, अपनी आपबीती की दास्तान...!

'हाँ तो गुलशन बिटिया, आँखन देखी हालात का मंजर था, पर आँख रोना भूल गई...मुँह में आवाज घुटकर रह गई। उफ! करना कयामत बन जाता था। देश की फसीलें उलांघ आना आसान, पर दिलों की बहुत ही मुश्किल हुईं थीं, उन दिनों...!'

'पर आपा, ऐसी हालत में आप सरहद के उस पार से इस पार कैसे आईं?' गुलशन कौर ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों को विस्मय के विस्तार में फिराते हुए पूछा।

अब वह इतनी भी छोटी न थी, उसे कुछ-कुछ याद आ जाता कि वह किस तरह उन हालात से बच बचाकर अपनी चाची सुरजीत कौर और अन्य शरणार्थियों के साथ अमृतसर में आकर बसी और बचपन से आज तक यहीं रच-बस गई है...! उनका क्या हुआ, जो अपनों से बिछड़कर पीछे रह गए। पूछने के लघु अनुपात में जरीना आपा की बयानबाजी ने तो कई वारदातों को जिंदा कर दिया था।

फिर भी...!

गुलशन कौर उत्सुक थी यह जानने के लिए कि यह जरीना आपा आखिर कौन है? और दो दिनों से उनके यहाँ टिकी हुई है, ऐसे जैसे कोई नजदीकी रिश्तेदार हो। पर यह संभव किसी हाल में न था। उसका पहनावा, बातचीत का लहजा अमृतसर के किसी भी आम आदमी से तालमेल नहीं खाता था। सुरजीत चाची ने एक आध बार उड़ते में उनके पड़ोसी होने के नाते जिक्र किया था। और यह भी ठीक से नहीं बताया कि वह कौन है, किसकी नातेदार है? सभी सवाल मन के किसी कोने में सहमे-सहमे से थे...!

एक बात जो प्रत्यक्ष रूप में सामने थी, वह थी चाची के आँचल का प्यार

दुलार, जिसे पाकर गुलशन एक कली से फूल की तरह खिल उठी थी। एक-आध बार लोगों को कहते सुना था—'गुलशन कौर का सोंदर्य कुछ अलग रंग और बू लिए हुए है। किसी अमीर घराने की अमीरजादी का जलवा है उसके चलन में, उसकी आन में, उसकी बान में!' तब वह कुछ भी नहीं समझी थी उन बातों का अर्थ!

'हाँ तो गुलशन बिटिया, तुम मुझे 'आपा' न कहकर 'दादी जान' भी कह सकती हो।'

'पर यह संबोधन तो!'

बात को बीच में ही काटते हुए जरीना आपा ने कहा—'संबंधों की बात नहीं मेरी लालपरी! मेरी उम्र, और इन चाँदी जैसे बालों को देखते हुए 'दादी' कहना-कहलवाना जायज बनता है, और तुम भी तो मेरी पोती की उम्र की हो, इसीलिए कह रही थी।'

'अच्छा आपा, आप अपनी उस पोती को अपने साथ क्यों नहीं ले आईं? क्या उसे वहीं गैरों के बीच रहने के लिए छोड़ आईं? क्या नाम है उसका?' पलभर में गुलशन ने अनगिनत सवाल जरीना आपा के सामने पसार दिए।

ऐसे में...!

क्या कहती जरीना आपा, क्या बताती वह? कैसे अपना सीना चीरकर कहती कि...! एक ऐसा सच, जो न उगलते बनता था, न निगलते।

'आप बताएँ ना आपा, उसका नाम क्या है? वह कहाँ है? चाची ने एक दो बार आपका और उनका जिक्र आधे-अधूरे शब्दों में जरीना बानो के नाम से किया है। बहुत याद करती है वह आपको।' कहकर गुलशन जरीना आपा की ओर देखने लगी।

और जैसे नींद से जाग उठी जरीना आपा! जरीना बानों का जिक्र सुनते ही हड़बड़ाकर बोल पड़ी, 'गुलशन उसका नाम है, गुलशन बानो, अरे...रे...रे...सारा बानो है!'

'सारा बानो, कितना सुंदर नाम है आपा...कहाँ है वह?' कहते हुए गुलशन कौर ने जरीना आपा की चुनरी को हल्के से यूँ लहराया कि चुनरी सर से उतरकर उसकी छाती पर आ ठहरी, जो धौंकिनी की मानिंद चल रही थी।

'वह अब जाने कहाँ खो गई है बिटिया, उसको तलाशते हुए मैं उस देश को छोड़कर इस देश में आई हूँ।'

'क्या मतलब...आपा! आपकी सारा बानो क्या सच में खो गई है?'

'हाँ बिटिया, उसे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते मेरी उम्र की कमर दोहरी हो गई है...सात साल वहाँ पाकिस्तान की गली-गली की मिट्‌टी छानी, पर वह नहीं मिली...'

'सात साल से आप उसे ढूँढ़ रही हैं? अब वह कितने साल की हुई होंगी आपा?'

गुलशन कौर की आवाज में खलबली सी मची थी। सवालों का ताँता बढ़ता जा रहा था।

'यही कोई पंद्रह-सोलह साल की हुई होगी मेरी बच्ची, कुछ तुझ जैसी, तेरी उम्र की! माँ का आँचल छूटा तो मैंने गोद में समेट लिया, पर अब, जब अल्लाह मियाँ के पास जाऊँगी तो क्या जवाब दूँगी उसकी माँ नूर बानो को!' कहते हुए जरीना बानो अपनी छाती पीटने लगी।

विभाजित दौर के दर्द की लकीरें वक्त-बेवक्त जब भी सालती हैं, तब वतन में भी बे-वतनी का अहसास जिंदा हो उठता है। जब खून पुकारने लगता है, तब अपने लोग जमीन की जड़ों से उखड़कर बेदर्द हवाओं के रुख के साथ हो लेते हैं। जैसे जरीना बानो अपनी पोती की याद की डोरी थामे अचानक अमृतसर आ पहुँची, बिना किसी सूचना के...! सुरजीत कौर उसे देखकर जर्द पत्ते की तरह सिहर उठी, जैसे बहार में खिजाँ की कोई आहट सुन ली हो। आँखों से नींद नदारद-सी हो गई। एक अनजाना डर उसके मन के कोने में दुबककर बैठ गया। वह जरीना बानो से आँखें चुराने लगी, उससे कतराने लगी। अक्सर सामना न हो इसलिए ज्यादा वक्त गुरुद्वारे में गुजारती। घर में रह जाते दो प्राणी, जरीना बानो व गुलशन।

इस बात का अहसास जरीना बानो को भी हुआ।

तभी एक चरमराहट से दरवाजा आँगन के भीतर खुला और सुरजीत कौर गुरुद्वारे की सेवा से निजात पाकर घर लौटी। गुलशन कौर चाची को देखकर उठी और उसके हाथ से लंगर से लाए हुए प्रसाद के 'दोने' और खाने का सामान लेकर रसोई में जाते-जाते कहने लगी...

'चाची खाना परोस दूँ, आपा भी सुबह से भूखी बैठी हैं, सिर्फ चाय पर टिकी हुई हैं, और अपनी खोई हुई पोती सारा बानो के दर्द की गाथा बता बताकर उदासीन हुए जा रही हैं।'

'हाँ गुलशन बेटी, दो तसरियों में प्रसाद बाँटकर तुम दोनों खा लो। मैं वही खाकर आई हूँ।' कहकर सुरजीत कौर वहीं खटिया पर कमर सीधी करने के लिए लेटने लगी।

गुलशन ने खाना परोसकर लाने के पहले एक हल्की-सी रजाई चाची के थके बदन पर पसार दी। चाची का मन उसे दुआएँ देता हुआ नींद में गरूब होने लगा। आसादीवार के वेले गुरुद्वारे पहुँचने के बाद अब घर लौटी थी। दोपहर के दो-तीन बज रहे हैं, नींद तो आनी ही थी...!

पर ऐसा होकर भी न हुआ। सुरजीत कौर ने आँखें तो बंद कर लीं, पर बंद आँखों में जो साए तैर आए, उनसे उसका बदन सिहर उठा था। यह तो भला हो गुलशन का, जो उस पर रजाई की तह चढ़ा गई, पर यादों के नुकीले भेदी जो आँखों की नींद चुग रहे थे, उन्हें कौन समझाए! अतीत के साये सदा बनकर आज कानों में गूँजने लगे। सात-आठ साल पुराने अक्स, सिंध से हिंद में आने की तैयारी वाले माहौल को फिर से जिंदा करने लगे।

'अरे सुरजीत बहन, हम सालों से पड़ोसी बनकर रहे हैं। एक-दूसरे के माई-बाप ही हैं। बस अब निगोड़े वक्त ने फासले बढ़ाकर हमें पछाड़ने की ठान ली है।'

'हाँ जरीना बेगम यह तो है। अब के बिछड़े जाने फिर कब मिलें, मिलेंगे भी या नहीं, कौन जाने? सरदार ने तो कल पौ-फटे ही निकलने की ठानी है। पाकिस्तान का बॉर्डर लाँघकर भारत जाकर बस जाने की बात बनी है। सुबह हम दोनों ही निकल जाएँगे। तुमसे भी शायद ही मिल सकें, इसे ही आखिरी मुलाकात समझना।'

कहकर सुरजीत कौर जरीना बेगम के गले लगकर अपने आँसू कमीज की बाहों से सोखने लगी।

'नहीं नहीं सुरजीत, यूँ न कह, हमें मिलना है, बिछड़ना नहीं। तुम्हें मेरी एक अमानत अपने साथ लिए जानी है। इस वक्त मेरा यहाँ से हिलना मुहाल है—' सरताज की बाँदी जो हूँ। अपनी मर्जी से जा नहीं सकती, पर मेरी गुलशन बानो को तो तू अपनी बनाकर साथ ले जा सकती है। उसकी तो माँ नहीं है, अब तू ही उसकी माँ बन जा और मेरे जिगर का टुकड़ा अपने घर आँगन में जाकर रोप देना। अगर जीवन में समय और मौका दिया तो जरूर मिलेंगे। अब चलती हूँ...!'

'पर जरीना बेगम...मैं हिंदू...'

'अरे बस भी कर, कहा ना वह तेरी है। तू जो चाहे उसका कर अपना नाम दे या नया नामकरण कर, उसे अपने साथ ले जा, या यहाँ मरने के लिए छोड़ जा, यह तेरी मर्जी है, मेरी नहीं' कहते हुए जरीना बानो हिरनी की चाल से घर के बाहर हवा की रफ्तार से निकली...!

और पलक झपकते रह गई सुरजीत कौर अपने ही घर में, सूनी दीवारों के बीच, एक गुदगुदाहट महसूस करते हुए, एक लर्जिश भरा स्पंदन महसूस करते हुए। वह बेऔलाद थी, पर सीने में ममता नहीं थी, यह बात न थी। बस डर था कि जात-पात की दीवारें कहीं उस रिश्ते को ऊँच-नीच की तराजू में न तोल बैठें। मजहब की वेदी पर गुलशन बानो के मासूम बचपन को कहीं कोई आँच न आ जाए। माहौल ही ऐसा था कि...!

सिख और मुसलमान इक-दूजे के कट्टर बैरी हो गए थे। बात-बात पर तलवारें चीखतीं और दर्द मौन-सा होकर सिसकता रहता उन सने हुए खून के धब्बों को देखकर, जो एक ही रंग के थे...लाल! सभी का खून लाल है, तो क्यों किसी के दर्द से खून में उबाल नहीं आता? क्यों दर्द को दीमक लगी है कि देखकर भी किसी का दिल नहीं पसीजता? क्यों मानवता अपने अर्थों को अनाथों की ओर धकेल रही है।

खाट पर लेटी सुजीत जानती थी कि रजाई की तह तो सिर्फ तन को ढाँप रही थी, उसका मन तो कल के फसादों की नुकीली यादों से तार-तार हुआ जा रहा था...!

'अरी सुरजीत कौर...तू क्यों सोई है! दिन की रोशनी को रात की कालिख समझ बैठी है क्या? उठ, तेरे आँगन में उजाला अब भी बाकी है। सारी की सारी तारीकियाँ मैंने अपने आँचल में समेट ली हैं!' कहते हुए उसने दर्द भरी आवाज में गुलशन कौर की ओर निहारते हुए एक आदेश दिया...!

'अरे बेटा गुलशन...तीन तसरियों में खाना बाँट लेना। तेरी अम्मी सुरजीत भी हमारे साथ खाएगी। आज का दिन मिलन का जश्न है, धरती आसमान से मिल रही है! हाँ...हाँ, आजा तू भी आजा। सुरजीत तू भी उठ...!'

अब गुलशन कौर सोच के दरिया में बहने लगी। वह हैरानी से जरीना आपा के कहे लफ्जों की उधेड़बुन में उलझ गई, जिसमें प्यार भी था, दुलार भी, दर्द भी और दवा भी! सुरजीत कौर से भी न सहा गया, न रहा गया, उठकर खाट पर बैठी और भीगी पलकें उठाकर जरीना बानो की ओर देखने लगी...गहराई तक उसकी आँखों में झाँकते हुए यह जानने की कोशिश करने लगी थी कि जरीना बानो क्या वाकई मिलन का जश्न मनाने की बात कर रही है या उसके बाद की जुदाई का ऐलान कर रही है। धरती अंबर के मिलन की बात वह चाहकर भी समझना नहीं चाहती थी।

क्योंकि......!

जरीना बानो की पोती गुलशन बानो को जब दोनों पति-पत्नी अपने साथ अमृतसर ले आए तो सरदार ने सभी से कहा कि वह उनके भाई की बेटी है, गुलशन कौर। क्योंकि सभी जानते थे कि उनकी कोई औलाद नहीं हुई और फिर गुरुद्वारे में नामकरण के ऐलान से उनके सूने बंजर सीने में जैसे शबनम की नमी बरसने लगी। ममता का आँगन फलने-फूलने लगा, गुलशन को सींचते-सींचते उस खुशबूदार सुमन की महक उनके मन में रच-बस गई।

'मैं आपको 'अम्मी' कहकर पुकारूँगी और उन्हें बाबा कहकर।' 'यह 'चाची' शब्द मुझे अच्छा नहीं लगता।' गुलशन कौर ने जिद की। उम्र भी तो ऐसी थी, सात-आठ साल की।

'नहीं, तुम मुझे चाची ही कहोगी। तुम्हारी आवाज में मुझे चाची शब्द 'अम्मी' जैसा ही लगता है। सरदार को भले तुम 'बाबा' बुलाओ'। सुरजीत ने तर्क देकर अपने ढंग से गुलशन को मना लिया। कारण था... जो दिल में डर बनकर समा गया था।

डर यही था...!

कभी-न-कभी तो हालात बदलेंगे, समय बदलेगा और खून अपना रंग दिखाएगा। अगर ऐसा हुआ तो गुलशन फिर से जरीना बानो के घर का गुलशन बनी, तो वह यकीनन खिजाँ के सूखे पतों की तरह चरमरा जाएगी।

और फिर मौसमों की तरह दिन, महीने साल बीतने लगे। तीन साल के बाद गुलशन के बाबा परलोक पधारे और सुरजीत ने गुलशन की सिसकियों को सीने में सँजोया, उसे दुगना प्यार-दुलार देकर वह गुरु की शरण में आन बसी। गुरुद्वारे को दूसरा घर बना लिया। रात दिन की सेवा उसकी आराधना बन गई। यह देखकर पंचों ने गुरुद्वारे में ही उसे एक कमरा दे दिया, जहाँ दोनों मुनासिब महफूजियत के साथ जीवन जीने लगीं। जीवन की धूप-छाँव के सायेदार पलों के बीच गुलशन भी अब बचपन से जवानी की चौखट पर आ खड़ी हुई। सोलह साल की होते ही कॉलेज में दाखिला पा लिया था।

और एक दिन अचानक...!

जरीना बानो का खत सुरजीत कौर के नाम गुरुद्वारे के पते पर मिला कि वह उससे मिलने कुछ सिखों के साथ उसी गुरुद्वारे में आ रही है। सुरजीत की सेवाओं की महक किसी हद की मोहताज न थी और अक्सर उसकी चर्चा अमृतसर के उस गुरुद्वारे के साथ जुड़ी रहती। जरीना बानो का दिल गवाही देता रहा कि यही उसकी गुलशन बानो की माँ है।

भूतकाल के गलियारों से होती हुई सुरजीत कौर की यादों की परछाइयाँ उसे वर्तमान में ले आईं। जरीना बानो की आवाज एक खुशनुमा खबर की तरह हवा की तरंग बनकर लहरा रही थी। वह उठकर खाट पर बैठी और जरीना बानो की ओर भीगी पलकों से देखती रही।

जरीना बानो ने एक शोख मुस्कान के साथ खाने की ओर इशारा किया तो सुरजीत को जैसे होश आया।

'गुलशन बेटी, रोटी तो ले आई हो पर दाल भीतर ही भूल आई हो। क्या अपनी आपा को रूखी रोटी परोस दोगी?' कहते हुए सुरजीत कौर अपनी खाट से उठकर जरीना की बगल में बैठ गई।

'अरी दइया...' कहते हुए गुलशन कौर रसोईघर की तरफ भागी।

'सुरजीत अब चलो, अब निवाले अदला-बदली करो और जश्न मुबारक को अंजाम दो।' कहते हुए जरीना बानो ने पहला निवाला दाल रोटी का गुलशन कौर के मुँह में दिया और दूसरा सुरजीत कौर के मुँह में डाला। सुरजीत कौर और गुलशन ने भी वही रस्म निभाई। इस खुशी के सामने दर्द की लंबी-चौड़ी फसीलें बौनी हो गईं!

सभी के चहरों पर मधुर मुस्कान टहलने लगी।

'अरी सुरजीत, एक बात तो बता, जितना सुंदर नाम 'गुलशन कौर' तूने इसका रखा है उसके सामने तो इसका हुस्न भी फीका पड़ रहा है।'

'हाँ जरीना बेगम, इस पार के गुलशन का रंग उस पार की गुलशन के हुस्न के सामने फीका ही पड़ना है। उस पार के इस गुलशन की खुशबू मेरी साँसों में कुछ यूँ बसी है कि अब लगता है कि इसके बिना भी क्या कोई जीवन होगा?' और वह अपनी कही हुई बात का रंग जरीना बानो की आँखों में देखना चाह रही थी।

'भाग्यशाली हो सुरजीत कौर, इसकी परवरिश में तुमने अपने वाहगुरु की कल कल बहती गुरबाणी भी घोल दी है। हाँ गुलशन कौर सच में तेरे आँगन का फूल है, जो हर मजहब से परे सच की पनाह में पनप रहा है।' कहकर जरीना आपा ने गुलशन कौर के सर पर स्नेह से हाथ फेरा।

'जरीना बानो...मैं...मैं...' कहकर सुरजीत रुआँसी हो गई।

'अरे जश्ने-मुबारक के बाद ये आँसू नहीं सुहाते पगली। यही वाहगुरु तुम्हारा मालिक है। मैं अगले हफ्ते 'सरताज' की पनाह में चली जाऊँगी। तुम गुलशन कौर के साथ, खुश रहो, आबाद रहो।' कहकर जरीना बानो ने सुरजीत

को गले लगा लिया।

'दादी जान...आप कुछ दिन और रुक जाएँ हमारे पास...!' गुलशन कौर के इस कोमल संबोधन ने जरीना बानो को गद्‌गद्‌ कर दिया। उस संबोधन में संबंधों की महक थी, और अपनाइयत का अहसास था, जिसे वह जीना चाहती थी, सँजोना चाहती थी।

उससे अब रहा न गया। अपनी खटिया से उठकर गुलशन कौर को गले लगा लिया कुछ ऐसे जैसे कोई लहर किनारा छूने के लिए आमदा हो। गुलशन भी अपनी दादी आपा के गले में बेल की मानिंद लिपट गई, पता ही न चला कि लहर किनारे से मिल रही है या किनारा लहर से...!

'मैं बहुत खुश हूँ कि विभाजन देशों का हुआ है, दिलों की लकीरें अब भी जुड़ी हुई हैं!' कहते हुए सुरजीत कौर ने आगे बढ़ाकर दोनों को अपनी बाहों में समेट लिया।

वो जहान-ये मन

ए॰जे॰ उत्तम

मुझे बोध नहीं था कि चारों तरफ फैले हुए बाहरी जहान के तपोवन का एक तिनका भी इतना बलवान है कि अंतर्मन पर सालों की अँधेरी गुफाओं पर जमा हुआ मैल, छुहाव से ही मिटा देगा। इस मार्केट में बैठी भाजीवाली के दो-चार शब्दों में जाने क्या बात थी, जो अंदर में हलचल मच गई। जाने क्या सोचकर शिकायत कर बैठी 'मुझे आधे रुपए में सिर्फ दो चार पत्ते कोतमीर दिए हैं, पर उस दूसरे आदमी को तो ढेर सारा कोतमीर दे दिया। मैंने भाजियाँ भी ज्यादा ली हैं, और मैं तो तुम्हारी रोज की ग्राहक भी हूँ। मगर ये आदमी तेरा कौन लगता है?'

भाजी वाली अल्हड़ जवान थी, सो शोखी से कहा–'ये यार लगता है' यह सुनकर और भाजी वालियाँ भी हँसने लगीं और बेचारा वह आदमी हक्का-बक्का-सा होकर चलता रहा।

मैं भी कुछ परेशान हुई, पर फिर भी भाजीवाली को तुच्छता का अहसास दिलाने की खातिर कहा–'इस यार की बात सुनकर कहीं तेरा पति तुझे न मारे!'

वह तुनककर बोली–'क्यों मारेगा? उसको भी तो मिल में मजदूर सहेलियाँ 'यार' बुलाती हैं।'

मैंने कहा–'यह सुनकर तुझे ईर्ष्या नहीं होती उसकी सहेलियों से?'

कहने लगी–'कौनसी पत्नी को ईर्ष्या नहीं होगी? पर घर-बार और इस काम के बीच इतनी फुर्सत कहाँ है, जो उस ईर्ष्या को ले बैठें? ये आप जैसे फुर्सत मिजाज लोगों का मर्ज है। आपके पति के साथ कोई जवान लड़की मुस्कराकर दो मीठे बोल बोलेगी तो भी हसद और अविश्वास होगा कि कहीं वह उसे आप से छीन न ले।'

ऐसा कहकर वह मिल मजदूर की पत्नी भाजीवाली तो हँसने लगी पर साथ में सुर मिलाकर और भाजीवालियाँ भी हँसने लगीं।

मेरे मन ने और ज्यादा सुनने में अपनी लाचारी दिखाई और मैं भाजी की थैलियाँ लेकर घर की ओर रवाना हुई, पर उस भाजीवाली के सीधे-सादे अल्फाज–'ये यार लगता है, ये आप जैसे फुर्सत-मिजाज लोगों का मर्ज है।' मेरे अंदर में प्रतिध्वनित होकर गूँजने लगे और मेरे पाँव घर पहुँचने को बेताब हो उठे।

घर पहुँची, दरवाजे पर दस्तक दी तो दरवाजा खुलते ही बहू को तैयार होकर सहेली के साथ ऑफिस के लिए निकलते देखा। बेटा तो पहले ही ऑफिस गया हुआ था।

मुझे देखकर सहेली ने मेरी बहू से कहा–'अच्छा यार, चलो जल्दी करो।' ये न हो कि बहू मेरे साथ बात करने के लिए रुक जाए। कैसी मशीनी मनोवृत्ति हो गई है! जमाना भी कितना बदल गया है। हर किसी को लड़कियों ने 'यार-दोस्त' बना लिया है। मुझे इस लफ्ज से जुड़ा मेरा माजी याद आने लगा। मुझे विभाजन के वक्त की सिंध की याद सताने लगी। जब एक कँवारी ने इस लफ्ज 'दोस्त' से मेरे मन में हसद और अविश्वास का बीज बोया था, जिसने यहाँ आकर मेरे पति को दुख के घेराव में घेर लिया।

उस वक्त सिंध में मैट्रिक ही पास की थी कि मुल्क का विभाजन हुआ। कॉलेज में पढ़ने की कितनी खुशी और ख्वाहिश थी, लेकिन इस विभाजन ने हमारी हर खुशी और ख्वाहिश का अंत कर दिया। हमारे लिए चारों ओर डर, दहशत और बेसलामती वाली हालत पैदा हो गई, बावजूद इसके सिंध में बाहर से आए लोग बसने लगे तो वहाँ रहना और ही संकटमय हो गया।

अँग्रेजों द्वारा विभाजन के ऐलान से रातों-रात हम सिंध धरती के मालिक, गैर से हो गए और आए हुए गैर धाकड़ महमान मालिक बन गए, क्योंकि वे मुसलमान थे और हम हिंदू। यह मतभेद का जहर, प्यार-मुहब्बत में रहनेवाले हिंदुओं में नए सिरे से फैल गया, हालाँकि जिस जिन्ना साहब ने हिंदू-मुसलमान को जुदा कौम कहकर बँटवारा कराया, उसने पाकिस्तान का गवर्नर-जनरल होने पर पहले दिन कहा कि अब पाकिस्तान में न कोई मुसलमान और न कोई हिंदू बुलाया जाएगा, पर मुल्क का एक जैसा शहरवासी बराबर और हकदार रहेगा, मगर इस ऐलानों पर अमल नहीं किया गया।

इसलिए जवान पीढ़ी को जैसे मौका मिला वैसे ही अपना घर, उसमें सजाई हुई हर शै को कौड़ियों के दाम बेचकर जाना पड़ा। कुछ तो अपने कच्ची उम्र की कन्याओं की शादी कराने में लग गए। रातो-रात मंगनी और ब्याह होने लगे। कहीं पर न पूरी तरह से शादी की रस्में निभाई गईं, न खुशी के साथ

नाचना-गाना ही हुआ। बस खामोशी की घुटन में ही बंधन बाँधे गए और सात फेरे लगवाए गए। न जात का पता लगवाया, न सूरत और सीरत, न इल्म, न ही अक्ल, न प्यार व पसंदी, न स्वभाव और विचारों को ही देखा गया।

मैं भी इसी तरह बंधन में बाँध दी गई, खुद से सात-आठ साल बड़ी उम्रवाले कॉलेज पढ़े हुए एक मास्टर के साथ माँ-बाप की अनेको मिन्नतें कीं कि मैं अभी नाबालिग बालिका हूँ, कॉलेज में पढ़ने दो, छोटी उम्र में ही शादी के जंजाल में न फँसाओ, पर उन्होंने मुझे मेरी उम्र की औरतों को दिखाते हुए कहा कि वे उसकी उम्र में दो-तीन बच्चों की माएँ बन चुकी हैं। इस तरह मेरी शादी करवाकर मेरी माँ, छोटा भाई और बहन सिंध से चले गए। हैदराबाद स्टेशन पर, ट्रेन में चढ़ते समय उन्हें भेड़-बकरियों की तरह जूझने का नजारा याद करके आज भी मेरी छाती में धड़कन तेज हो जाती है।

मैके की रवानगी के बाद हम घर लौटे तो मेरा पति मुझे भीतर छोड़कर, खुद पड़ोस में मुस्लिम दोस्तों के पास चला गया। मैंने भीतर आकर कुछ साँस ली ही थी कि सास ने कोई किताब मुझे देते हुए नाटकीय ढंग से कहा—'अरी बहुरिया, ये देख, वो पड़ोस वाली कॉलेजी छोरी है न, उसने यह किताब तेरे पति के लिए दिया है। जब पूछा कि तू उसकी कौन लगती हो, तो खुशी से हँसते हुए कहा—'वह मेरा दोस्त है।'

वही 'दोस्त' लफ्ज, 'यार' के रूप में आज उस भाजी वाली के मुँह से सुनकर तीस साल पहले की सिंध की कहानी आँखों के आगे फिर उभर आई। उस जमाने में दोस्त लफ्ज पर मेरी सास को तो अजब लगा था, पर मेरी भी सोच झुँझला गई। फिर उस किताब में अँग्रेजी शायर बायरन का 'डान जान' का इश्की किस्सा व रोमांसवाले फोटो देखे तो खून कुछ जमने-सा लगा। वे तस्वीरें सास को दिखाते हुए कहा—'देखो अपने लाड़ले की करतूत, कैसी किताबें पढ़ाता है कँवारी लड़कियों को?'

यह सुनते ही सास ने जो सुनाया वह आज तक नहीं भूली हूँ मैं। कहा—'बेड़ा गरक हो जमाने का, देखो ना कँवारी छोरी को क्या जरूरत थी, जो तेरे पति को दोस्त बनाने चली है।'

मुझे सास का यह सच दिल से लगा जो आज भी नहीं बिसरा। हकीकत में मेरी स्वर्गवासी सास सीधी-सादी, साफ गोयाई व सच कहने की पक्षधर थी। कभी उसका बेटा उसके खिलाफ की हुई मेरी शिकायत मानकर उसे कुछ कहता तो वह बेधड़क कहती थी—'पगला गया है। दर्द पीकर तुझे जनम दिया

है। माँ का अदब-लिहाज कर, बीवी का गुलाम न बन।'

यह सुनकर सारे घर में एक खिलखिलाहट का स्वर सुनाई देता, पर मैंने उस वायुमंडल को पार करते जब पति को गुस्से से कहा—'यह देखो 'डान' जान की रोमांस की किताब आपकी सहेली दे गई है।'

उसने माँ की तरह सीधे-सादे अंदाज में कहा, 'तुमने कॉलेज नहीं पढ़ा है, नहीं तो इस किताब पर इस कदर गुस्सा व हसद न होता। यह आजादी के पैगंबर कवि बाइरन और शेली वगैरह कॉलेजी कोर्स में पढ़ने पड़ते हैं। खुद हमारे टैगोर, जवाहरलाल के भी ये प्रिय कवि थे। यह 'डान जान' किताब पड़ोसन मिस भारवानी ने खुद पढ़ने के लिए कॉलेज की लाइब्रेरी से ली है, वही मुझे भी पढ़ने को दे रही है। सच मानो किताब ही हमारी सबसे दुर्लभ दोस्त है।'

मैंने तंजी रवैये से पूछा—'उस सहेली मिस भारवानी से भी?'

और पति ने उस तंज का जवाब बेहद सादगी से दिया, 'अरे हाँ, और नहीं तो क्या?'

उन्हें बराबर किताबों से बेहद प्यार था, वे बेहद चाव के साथ पढ़ा करते थे, जो कुछ उन्हें अहम लगता था उसके नीचे लकीरें खींचते थे। कितने ही आदमी उनके पास किताब देने-लेने और सलाह करने आया करते थे। पर भूल से भी वही सहेली उनके पास आई थी तो बहुत जलन और हसद हुआ करता था और उसके कहे लफ्ज 'वो मेरा दोस्त' है, दिमाग पर हथौड़े की तरह चोट करते।

मैं इसलिए ही सिंध से तब्दीली के लिए पति को बरबस कहती रही, पर वे ऐसा करने को तैयार न थे। इस कदर कि उसके सब रिश्तेदार भी वहाँ से चले गए, पर फिर भी कहने लगे—'ये जननी जन्म भूमि कैसे छोड़ूँ? श्री रामचंद्र जी ने भी अपनी जन्मभूमि अयोध्या को सोने की लंका के आगे तुच्छ समझा था। हमारी सिंधड़ी हमारे लिए ऐसी ही अहम पवित्र भूमि है।'

पर मेरा शक फिर भी बढ़ता रहा कि ये सब बहाने बना रहे हैं, वह इस सहेली से दूर होना नहीं चाहते। हसद और शक ने मन पर मैल की परतें चढ़ा दीं। उस सहेली के लफ्ज याद आया करते थे—'वो मेरा दोस्त है।'

वहाँ विभाजन के कारण मुल्क की हालत बदतर होने लगी। अखबारों में हिंदू-मुस्लिम के बीच में नफरत और कुलफत बढ़ जाने की खबरें छपने लगीं। सिंध में जहाँ पहले हिंदू मुसलमान पास पड़ोस में माई-बाप बनकर बैठे थे, वे अभी एक-दूसरे के दोस्त और मददगार भी नहीं बन सके। इसके बावजूद मेरे

पति सिंध को छोड़ने की मेरी बात से सहमत नहीं हुए। उस वक्त विभाजन को छः महीने भी नहीं हुए थे कि बाहरी लोग भीतर आए और हैदराबाद में फसाद को बढ़ावा देने लगे। कुछ वक्त पहले कराची में भी उन्होंने फसाद करवाया था, जो विभाजन के पहले सिंध में नहीं हुए थे।

उन फसादों में हमारे सिंधी मुसलमान दोस्तों का वक्त के पहले हमें आगाह करना और मदद करना हमारे बचाव का कारण बना और कई जगहों पर भी सिंधी मुसलमान हिंदुओं का बचाव हुआ, जैसे भारत में भी फसादों के वक्त हिंदुओं ने अपने मुस्लिम पड़ोसियों और दोस्तों का बचाव किया था।

उस मनहूस जनवरी महीने के अंत में देशपिता महात्मा गांधी की शहीदी की खबर सुनकर हाहाकार मच गया। मेरे पति ने तो रोकर खुद को बेहाल कर दिया। वे इतने दुखी और उदास हुए कि आखिर सिंध छोड़ने के मेरे प्रस्ताव को मान लिया, हालाँकि उनकी सहेली अभी भी वहाँ से कहीं गई न थी। तब जाकर खुशी हुई और मेरे मन को कुछ चैन मिला। लेकिन अजब तब लगा, जब वहाँ से रवाना हो रहे थे, तब वह मेरे पति से मिलने आई तो दिल में दबा हसद फिर जाग उठा। हँसते हुए उसने कहा–'इस बहन को भी साथ लेकर नहीं जाओगे?' मैंने जब उसको देखा अनदेखा किया तो उसने फिर से अँग्रेजी में अपने दोस्त से कहा–'मुझको भुला तो न दोगे?' तो मैं जलभुन उठी। हालाँकि इसी अंदाज में मेरे पति के दोस्तों ने भी मेरे साथ अपनाइत से बात की है, पर उनको तो कभी भी हसद नहीं हुआ है। आज भी उस भाजीवाली की गुफ्तार ने इस नजारे को मन के पर्दे पर जिंदा करके खड़ा कर दिया है।

हम मुंबई की ओर रवाना होने के लिए कराची में आए, वहीं पति के कुछ मुस्लिम दोस्त अलविदा कहने आए और भरे गले से बार-बार कहा–'माँ सिंधड़ी को न भुलाना।' मेरे पति को अलविदा कहते कहा–'दुआ करना कि यहीं अपनी माँ के पास जल्दी लौट आएँ।' मुझे उसकी यह बात बिलकुल भी भली नहीं लगी और मैंने पति से कहा–'अब यहाँ कौनसा रिश्तेदार बैठा है, जिसके पास लौटकर आना है? अभी ताजा शादी की है, पत्नी की ओर भी कुछ फर्ज पालने का ख्याल है या नहीं?' जवाब में बड़े स्नेह से कहा, 'यहाँ देखा नहीं कि तेरा ख्याल इतना रखा कि माँ से जोरू के गुलाम का खिताब मिला। उसके जाने के बाद यह खबर न रखी कि घरवाले अब कहाँ हैं?'

मैंने भी खुनकी के साथ कहा–'वैसे तो आपसे बँध जाने के बाद मैंने भी तो अपनों को भुला दिया है।'

हम जब मुंबई जैसे अजगर शहर में पहुँचे तो हमसे पहले आए सिंधी बड़े दर-बदर थे। जाने कितना अरसा खुले आसमान के नीचे बिताना पड़ा, उसके बाद कल्याण कैंप की बैरकों में टाट के परदे लगाकर भी रहना पड़ा। कभी टीन की तपती छतों के नीचे तो कभी बारिश में बहती छतों के नीचे भी सोना पड़ा। रोजगार के लिए अपने काँधों पर भरोसा होने के बावजूद मकानों में काम करते मालिकों की बातें सुननी और सहनी पड़ती थीं। ऐसी मुसीबत के वक्त में सिंध के कुशादे कमरों और बड़े आँगन वाले हवादार घरों में गुजारे सुख के पल और शांतमय जीवन की बहुत याद आती थी। सच में हाथ से सब-कुछ छूट जाने के बाद ही हर शै की कद्र होती है, जैसे सिंधवालों को भी अब हमारी कद्र हुई है।

हम कैंप छोड़कर मुंबई की बसी हुई बस्तियों में आ बसे, दो-तीन सालों में ही हम दो से चार हो गए। मेरा सारा वक्त घर में ही बेटे और बेटी के लालन-पालन में गुजर जाता था, इसलिए पति ने भी नौकरी करने के लिए जोर नहीं दिया। खुद ही सारा समय आजीविका के लिए मास्टरी और टयूशन करते रहे, पर कभी कोई जवान छोकरी पति के पास पढ़ने, ट्यूशन लेने या किसी और काम से आती तो उनकी सिंधवाली सहेली याद आ जाती। उसका कभी-कभी खत आता रहता था। तब मेरे मन में हसद जाग उठता, इसलिए घर में अक्सर खट-पट चलती रहती थी। बेटी बड़ी होते ही बाप की, और बेटा मेरी तरफदारी करने लगा।

एक दिन मुंबई के बाहर बसे सिंधी घर में बेटी की शादी हो गई, पर वह सुखी न रही। बेटा कॉलेज पढ़ने के साथ-साथ नौकरी भी करने लगा। कॉलेज पूरा करके, सिविल मैरेज करके बहू घर ले आया। न सलाह, न मश्वरा और न कोई शगुन-रस्म। बस शादी कर ली। इसलिए घर में किलकिल और बढ़ गई। बेटा मेरी तरफ था, पर बहू ससुर की तरफदारी करती रही, तो हसद की आग और भड़क उठी। फिर हसद के साथ स्त्री हठ हमजोली हुआ तो पति के खिलाफ मन मैला ही रहा।

आखिर एक दिन अचानक ही दिल टूटने के कारण वह स्वर्गवासी हुए। तब बहू ने उस घटना के लिए कई दोष मुझपर मढ़े, पर हासिद व हठीला मन मानकर भी न मान पाया। मन मसोसे कई दिन पड़ी रही। आखिर सब्जी-तरकारी के लिए घर से निकलना ही पड़ा और बदले हुए जमाने से साक्षात्कार हुआ, जिसमें एक मजदूर की पत्नी भाजीवाली के साफ, सीधे, सच्चे शब्द मेरे हासिद और हठीले मन को शिक्सत दे गए।

तड़ी-पार

मोहन कल्पना

मुझे ऐसा लग रहा है कि उसने अपना हाथ बढ़ाकर मेरे चेहरे से मेरा मुखौटा उतार दिया है। अब वहाँ कोई चमड़ी, कोई मांस नहीं। वहाँ सिर्फ एक खोपड़ी है। ऐसा भी लगता है कि बदन पर कोई कपड़ा नहीं है। न चमड़ी, न मांस है। मैं न सिर्फ नंगा हूँ, पर जैसे एक जीता-जागता मुर्दा हूँ। एक हड्डियों का ढाँचा हूँ, जिसके साथ मेरी चेतना, मेरा वजूद जुड़ा हुआ है।

मैं एक दुकानदार हूँ। मेरा एक होटल है। सूरज डूबता है और होटल खुलता है, सूरज चढ़ता है और होटल बंद हो जाता है। सामने म्यूनिसिपल नाका और बाहर नेशनल हाइवे है। सारी रात रोशनी और लोगों का आना-जाना जारी है।

यहाँ ड्राइवर, क्लीनर और आते-जाते लोग चाय पीते, डबलरोटी, बिस्कुट खाते हैं। कुछ अंदर जाकर चुस्की भी भर आते हैं। कहते हैं, 'वाह साईं सिंधी, चाय नहीं अफीम का प्याला है। पूरे हिंदुस्तान में ऐसी चाय कहीं न मिली।' बादशाह चाय, लश्करी चाय, हिंदू चाय, मुस्लिम चाय, इस सिंधी चाय के सामने कुछ नहीं है। मैं चाय में खसखस डालकर उनकी जेबें काटता हूँ।

मगर आज मेरा तमाम वजूद मुझसे छीना गया है या वजूद मेरा कायम है, बाकी पूरा शरीर छीना गया है और एक हड्डियों का ढाँचा (अस्थिपंजर) उस वजूद से जुड़ा हुआ है। अब उसे कोई जलाए या जमीन में गाड़ दे, कोई फर्क नहीं पड़ता। उस बदमाश ने साबित कर दिया है कि मैं कोई मिस्र का मकबरा, कोई मोहजोदड़ो हूँ और अब मुझे यूँ लगता है कि मैं वही हड्डियों का ढाँचा हूँ, जिसे दफनाने के लिए कोई धरती नसीब न होगी।

वसंत, सितारा का दादा है। उसने तीन ऐसे गुनाह किए कि उसे चैप्टर केस में फँसाकर तड़ी पार किया गया है और वसंत ने उल्हासनगर में पनाह ली है।

होटल में कभी गाली-गलौच, मुक्केबाजी होती है, तो मैं शटर नीचे करता, पर वसंत दादा के बाद मुझे उसकी जरूरत नहीं पड़ी। वह पीछे शिव

मंदिर के ढके आँगन में सोता है, जहाँ रात को उसका धंधा चलता है। सुबह को कहता–'सिंधी साईं, चाय दो कप।'

गुजरे कई दिनों से उसका धंधा बंद है, कारण–नया इंस्पेक्टर सख्त है। अक्सर इस शहर में सख्त इंस्पेक्टर आते हैं और तीन सालों के तजुर्बे के बाद नर्म बनकर तबादले के तहत चले जाते हैं।

मैंने दुकान पर कुछ इस तरह के बोर्ड लगाए हैं–'आज नकद, कल उधार', 'उधार मुहब्बत की कतरनी है', 'नकद यहाँ, उधार अगली दुकान पर।' मगर वसंत अनपढ़ है। उसने हफ्ते-भर से पैसे नहीं दिए हैं, इसलिए आज मैंने उससे कुछ कहा।

भीतर पीले बल्बों की रोशनी और कोनों पर लटकते जाले, कुछ देवताओं एवं फिल्मी अदाकारों के फोटो, बाहर प्रभात की गुलाबी रोशनी।

वह आया और कहने लगा–'सिंधी साईं, दो कप चाय।'

मैंने कहा–'भाई पहला हिसाब चुकता करो तो चाय दूँ।'

मैंने देखा कि जब दर्द-भरे चेहरे पर मुस्कान बिखरती है, तो वह बहुत रमणीय लगती है।

मुस्कराते कहा–'हरामी इतना कमाते हो, गणपति की तरह पेट बाहर निकल आया है, पर पैसों से मोह नहीं निकला है। ऊपर तो खाली हाथ जाओगे।'

मैंने भी कहा–'हरामी होगे तुम, तुम्हारा बाप। हम ऊपर की नहीं सोचते। सब-कुछ यहाँ के लिए चाहिए। मगर तुम बेशरम, तड़ी-पार...'

मैं समझा कि झगड़ा होगा, पर वह और मुस्कराया, जैसे आपरेशन थियेटर में मेरे शरीर और आत्मा को अलग करना था। जैसे मुझे अपना असली चेहरा दिखाना था, जो मेरे पास नहीं था। फकत एक खोपड़ी थी। आँखों में खालीपन, सिर खाली। दाँत सलामत।

कहा–'सिंधी बाबू! मैं तो फकत थोड़े समय के लिए तड़ी पार हूँ–मगर तुम्हें तो सिंध वतन ने हमेशा के लिए तड़ी पार किया है।'

सच्चा पाकिस्तानी

हरी पंकज

वीजा खत्म हो रहा था, किसी भी हालत में तीन दिनों के भीतर लैगोस पहुँचना था। इसलिए किसी भी एअरलाइन में सीट हासिल करने की कोशिश कर रहा था। आखिर कीनिया ऐअरवेज में सीट मिली। पहले तो मुँह का जायका कुछ बिगड़ा, पर जब फ्लाइट रूट देखा—मुंबई, कराची, नैरोबी, दुआला, कनू, लैगोस. .. तो आँखें कराची पर ठहर गईं। वैसे तो मुझे सफर में रुक-रुककर जाना कतई पसंद नहीं, बोरिंग और परेशानी का बाइस लगता है।

पर कराची...

बदन में सरसराहट होने लगी। तन-मन सिमटकर बारह साल के बच्चे का हो गया। छलांग लगाकर उछलने लगा और हँस पड़ा। कराची और मेरा बचपन, दोनों एक-दूसरे से जुड़े हैं और फिर कराची जाने का मौका मिल रहा है और वही बचपन का आलम...।

यादों की कुछ झलकियाँ...

छुट्टियों के दिनों में सुबह के छः बजे, नंगे पाँव, तारी, अब्दुल, ईसर और कादर के साथ सराई क्वाटर स्कूल से चक्कर लगाकर, कोनों से सटकर निकलते थे। बातों और ठहाकों के साथ-साथ हमारा एक ही काम था, खजूर के लंबे झाड़ों से खजूर, मौसम अनुसार फल, बेर, कैरियाँ, जामुन और से तोड़ना, रेलवे, ग्राउंड तक पहुँचकर शाह को सलाम करके, भरी हुई झोलियों के साथ लौटना।

प्रेअर रोड पर वो सेऊ का मकान, बाजू में झूनी पुरानी गली और गलियों के उस तरफ आउट् राम रोड...इस तरफ बंदर रोड...।

ईसर सुबह आँख खुलते ही पहले पिता के पाँव छूता, पिताभक्ति सिखाता था, दौलत ने मुझे साइकिल चलानी सिखाई, तो किशन दलवानी ने आजादी के संग्राम में मुझको स्कूल बंद करवाने सिखाए थे। सोढ़ा की मशहूर दुकान जो

बाशेमल की थी, वहीं 'संसार समाचार' में से 'टारजन' और हून्दराज दास की 'जुगनू' कॉलम नामक अखबार पढ़ना सीख गया था।

और वो कादर...मकरानी? बस जब खजूर या मेवा तोड़ते हुए पकड़े जाते, तो वह आगे बढ़कर दहशत भरे स्वर में कहते–'अरे ओ, कदेरो दादा का नाम सुना है? मैं उसका ही बेटा हूँ कादर..!' और हम मार से बच जाते थे।

विक्टोरिया घोड़े-गाड़ी के पिछली तरफ चलानेवाले की नजर बचाकर चढ़ जाते थे तो कोई दुश्मन देखकर चिल्ला उठता–'गाड़ीवाले...पीछे चाबुक..' बस फिर तो बदन पर नीले निशान पड़ जाते थे। और अब्दुल उस चुगलखोर को पकड़कर मारता था...होली के दिन हम पाँचों के साथ और बच्चे भी जुड़ जाते। सफेद पोशाक वालों को, रंग लगाने का डर देकर, होलका माता और गाय के घास के बहाने पैसे ऐंठते। मजाल जो कोई बच पाए।

आशूरों के दिन ताबूतों की सर्कस पहुँचने के पहले ही, बाशेमल की होटल के आगे, लकड़ी के तख्तों पर शरबत, चने-चावल तैयार रखते। ताबूतों के नीचे तीन चक्कर लगाकर, दुआ माँगकर, शरबत और चने-चावल बाँटना शुरू कर देते थे।

गिली-डंडा, बिलौर, सिगरेट के खाली पाकेट, माचिस, सीपें, इमली के बीज, हमारी पूँजी थी।

खैर छोड़ो इन बातों को। कराची और बेटे बचपन पर दस पन्ने तो क्या, दस हजार पन्ने लिखूँ, तो भी दिल नहीं भरता! हमारे जहाज ने कराची के ऊपर एक पूरा चक्कर मारा। मेरी आँखें पूरी तरह खुली हुई थीं, पर समझ में कुछ नहीं आया। कल्पना की, अंदाजा लगाया, जरूर सदर होगी, बंदर रोड, बर्न्स गार्डन, हाईकोर्ट, नेटी-चेटी, कयामाड़ी, मनहोरो होगा, काफी दूर से 'मेरी वेधर टॉवर' के घड़ियाल की एक झलक मिली, वो भी एक पल के लिए!

जहाज दूसरा चक्कर लगाने के पहले ही आकर रन-वे पर उतरा। लाउड-स्पीकर पर मधुर जनानी आवाज सुनाई दी–'अभी हम कराची के डर्ग रोड हवाई अड्डे पर उतरे हैं। इस वक्त यहाँ रात के बारह बजकर पैंतीस मिनट हुए हैं। जिनको कराची उतरना है, वो उतर सकते हैं। हमारे साथ सफर करने के लिए धन्यवाद...!'

और फिर मर्दानी आवाज में...'मैं कैप्टन अली नूर हूँ, एक अहम सूचना आप सभी के लिए, कृपया ध्यान से सुनें। जहाज यहाँ एक घंटा रुकेगा, जिनको आगे सफर करना है, वे कृपया अपनी कुर्सियों पर बैठे रहें। यहाँ मार्शल-लॉ जारी

है, और कानून भी बहुत सख्त है। किसी को भी जहाज से नीचे उतरने की इजाजत नहीं है। उम्मीद है, आप हमें पूरा सहयोग देंगे।'

हाथ का सामान लेकर यात्री दरवाजे की तरफ बढ़ने लगे। मैं भी उठा, पर बिना सामान के अपनी जन्मभूमि पर पहुँचने पर दिल की धड़कन अजीब ढंग से बढ़ गई। माँ की गोद से बिछड़ा बेटा, फिर माँ की गोद पहुँचा। भीतर की हलचल और खुशी को समेटते हुए, लंबी साँस से उनपर काबू पाने की कोशिश करते हुए और सभी उतरने वाले यात्रियों के पीछे चलता हुआ, दरवाजे तक आया। नीचे उतरने वाली सीढ़ी के दोनों तरफ छः साहसी फौजी, तीन इस तरफ, तीन उस तरफ खड़े थे। छः मशीन गंस!

उतरनेवालों की आखिर में मैं था। एक फौजी ने हाथ के इशारे से पूछा—'सामान?'

मैंने भी हाथ के इशारे से कहा—'कुछ भी नहीं।'

'कराची?'

'नहीं लैगोस।'

दो खतरनाक मशीन गन्स मेरी छाती को निशाना बनाए हुई थीं। मैंने दोनों हाथ ऊपर करते हुए हँसकर हिंदुस्तानी जुबान में कहा—'यार, ये मेरे बचपन शहर है, यहीं तो मैं बड़ा हुआ हूँ।'

एक आदमी ने उर्दू में कहा—'मेहरबानी करके अपनी जगह पर जाकर बैठो।' उसकी आवाज में सभ्यता और नर्मी देख, मेरे मन का हौसला बढ़ा और मैंने कहा—'यार, आप लोगों का क्या जाता है? जहाज यहाँ एक घंटा रुकेगा। वो सामने लाउंज है, कैंटीन से एक गिलास पानी पीकर आऊँगा, और क्या?'

'पानी आपको इस जहाज पर भी मिल सकता है।'

मैंने इल्तिजा भरे स्वर में कहा—'पर उस कैंटीन का पानी सिंधु नदी का जल होगा। मेरी माँ की छाती का दूध...!'

अचानक उर्दू आवाज से सभ्यता और नर्मी गायब हो गई और मशीन गंस का तनाव भी बढ़ गया—वापस अपनी जगह पर...'अच्छा भाई अच्छा, नाराज होने की क्या बात है! चला जाऊँगा।' और कुछ पल सोचते हुए समझौते के स्वर में कहा—'पानी न सही, प्यासा ही चला जाऊँगा, कैंटीन दूर है...बचपन में जाने कितनी बार इस ड्रग रोड पर खाली माचिस की डिब्बियाँ हासिल करने आया था। सिर्फ एक मेहरबानी कीजिए, मुझे इस जहाज की सीढ़ी से नीचे उतरकर इस जमीन को छूने दीजिए।'

'मतलब?'

'इस जमीन की मिट्‌ठी की मैं पैदाइश हूँ, इस मिट्‌टी का तिलक अपने माथे पर लगाऊँगा और मुट्‌ठी-भर मिट्‌टी अपनी जेब में डालूँगा।'

वे तुरंत ही समझ गए कोई तड़ीपार सिंधी-हिंदू वापस लौटा है। उनकी आँखें आग उगलने लगीं। अब दो नहीं, चार गंस का रुख बेदर्दी से मेरी ओर हुआ। एक फौजी के इशारे पर एअर-होस्टेस मुझे बाँह से खींचकर मेरी सीट तक लाई और कहने लगी–'बंदूक के साथ बहस करते हो?'

मैं हताश होकर अपनी सीट पर बैठा, मन में उमड़ती हुई भावनाओं को सिसकियों में बदलते देखा और आँसुओं को रोकने के लिए रूमाल इस्तेमाल किया। विचार और वेदना को बस में करते हुए कुछ पलों के लिए आँखें मूँद लीं। जब आँखें खोलीं तो मेरी सीट के कुछ ही आगे एक शख्स जहाज की कुर्सियों की सफाई कर रहा था। मैंने आहिस्ता से पूछा–'ओए यार, तुम तो नयन-नक्श से मुझे सिंधी लगते हो।'

उसने चौंककर पहले इधर-उधर देखा और पास में खड़े अफ्रीकन नीग्रो को देखते ही फुसफुसाती हुई आवाज में कहा–'ऐं सरताज, हूँ तो सिंधी, पर यहाँ सिंधी में बात करने से मेरी नौकरी चली जाएगी। मेहरबानी करके बिलकुल धीमे बोलिए, यहाँ सिंधी बात करना मना है और मैं गरीब बच्चोंवाला हूँ, मालिक।'

कुर्सियों की सफाई के बहाने वह मेरे पास आ गया–'पर भाई, यह तो सिंध है। ये कराची, ये ड्रग रोड, क्या कर दिया है हमारी सिंधड़ी को? नीचे उतरने ही नहीं देते।'

उसने शिकायती अंदाज में कहा–'हमने क्या कर दिया है सिंध को? आपमें से कितने कायर मर्द सिंध से हिंद भाग गए और हम बाकी सिंधियों को गर्क में छोड़ गए।'

'दीन-धरम की जुनूनी कशमकश में हमें जाना पड़ा था।'

'आप न जाते तो आपकी दौलत यूँ महाजनों को तो न मिलती।'

'पर वे तो आपके दीन-धर्म के भाई हैं।'

'खुदा जाने किस खता की सजा देकर यह कहर ढाया हम पर। हमारा ही बुरा वक्त था, जो पाकिस्तान के लिए हामी भरी। जाने कैसा हाकिम है, जो साँस लेना दूभर हो गया है।' दो पल रुककर कहा–'मैं तो अनपढ़ गँवार हूँ, पर सिंध के घर-घर में यही बात होती है कि दीन-भाई तो दीन-भाई हैं, पर हमजुबाँ ही हम-शहरी होते हैं और वही अपने प्यारे भी होते हैं। सारे हिंदुस्तान-पाकिस्तान

को आजादी मिली, पर सिंध अभी भी गुलाम है खाविंद।'

बात करते हुए वह जहाज के आगे और पीछेवाले दरवाजों पर भी नजर धर रहा था। उसके अहसासों में डर घुला हुआ देखकर मैं अपनी कुर्सी छोड़कर उसके करीब इस तरह टहलने लगा कि वह अपना काम भी करता रहा और हमारी गुफ्तगू में भी कोई बाधा न पड़ी।

'और आपका वो सईद बाबा जो था?'

'वो बिचारा पीर होकर भी राहें तकता रहा, आखिर गुजर गया!'

मैंने पूछा–'उस पीर पागारी के जो पोइलग थे? उस शेख अयाज की कलम में तो ताकत थी।'

'मालिक, इतनी बातें तो विस्तार से मैं नहीं जानता, बाकी यह जानता हूँ कि, अयाज ने जीते-जी जब कुछ कहा तो उसे चुप कराया गया।' और फिर इधर-उधर देखकर कहा–'मुझे एक बार गुस्से में 'जाट' तो कहिए।'

'नहीं बाबा, मुसलमान कुल्हाड़ियों से मेरे टुकड़े-टुकड़े कर देंगे।'

'अब उस जुनून से भी तोबा कर ली गई है। ये नए हाकिम हमें पाकिस्तानी तो क्या, पर सच्चा मुसलमान होने तक को कबूल नहीं करते। मालिक, एक हकीकत बयाँ करूं? मेरे वालिद अब आँखों से देख नहीं पाते। एक दिन किसी अनजान आवाज ने कहा–'अरे जाट...' तो पिताजी ने उन्हें गले से लगाते कहा–'व्यापारी, कब हिंदुस्तान से लौटकर वापस आए? मैं जाट, तुम व्यापारी', 'व्यापारी और जाट' लफ्जों में कितना प्यार भरा हुआ है, दरवेशों की इस धरती के बेटे हम सिंधी प्यार से नाचते गाते हैं। हम फौजी तो हैं नहीं, फिर बंदूकों से क्या...।'

अचानक दो मशीनगन वालों को आते देखकर वह तनाव में आ गया और गुस्से भरी ऊँची आवाज में मुझे कहने लगा–'व्यापारी, क्यों दिमाग खाते हो? एक बार कहा न, जहाज से नीचे उतरने की सख्त मनाही है।'

मशीन गनवालों में से एक ने कहा–'शाबाश, तुम जैसे ही, सच्चे पाकिस्तानी हैं।'

जंग जारी है

देवी नागरानी

कैदी के लिए आजादी का हुक्म जारी किया गया। कैदखाने के उस पार की सलाखों के भीतर वह अपनी ही सोच के जंगल में घूम रहा था। पिछले नौ सालों से यहाँ रहते रहते वह उस कोठरी को अपना घर समझने लगा, वही स्थान जितना स्थायी था, उतना ही अस्थिर।

'कैदी तुम्हारे लिए आदेश आ गया है!'

'कैसा आदेश?' कैदखाने की सलाखों के इस पार खड़े कोतवाल की ओर बिना देखे उसने जानना चाहा। 'तुम्हारी रिहाई का!'

'क्यों क्या मेरी सजा की मुद्दत पूरी हो गई है?' कैदी की फटी हुई आँखें अब कोतवाल के चेहरे का मुआइना लेते हुए उसके चेहरे पर गढ़ गईं। 'नहीं अब देश आजाद हो गया है!' और वह लगभग चीखती हुई आवाज में दोहराने लगा... 'देश आजाद हो गया, आखिर देश आजाद हो ही गया। और सलाखों के भीतर खड़े-खड़े जोश में चक्कर लगाते हुए खुशी से ताली बजाकर नारे लगाता रहा। आजादी तो उसे मिलनी ही थी, देश की आजादी के साथ। इसी लड़ाई के लिए तो वे लड़े थे, एक नहीं, दो नहीं, हजारों, लाखों, सैकड़ों देश-प्रेमी। यह उनकी ही कुरबानियों का नतीजा था, उन जाँ-बाज सिपाहियों की अथक कोशिशों का परिणाम था, जो आज यह खुशखबरी उसे मिली है, और तोहफे के रूप में मिली है उसे अपनी आजादी!

'तुम्हें अपनी चीजों की शिनाख्त के लिए दो घंटे बाद ऑफिस में हाजिर होना है और फिर तुम जहाँ चाहो जा सकते हो।'

वह अपने अतीत की सँकरी गलियों से होता हुआ, मेन रोड की दाईं तरफ वाली कतार में बने घरों में, घर नंबर 11 की ओर टकटकी बाँधे खड़ा हो गया। घर बड़ा नहीं, छोटा-सा ही था। एक कमरा, छोटा-सा चबूतरा, खाना बनाने के लिए, गुसलखाना और छोटा-सा खुला आँगन, जिसमें एक मोरी थी। वहीं बर्तन

और कपड़े धुलते थे। घर की तरह परिवार भी छोटा-सा ही था—पत्नी सरस्वती, तीन साल का बेटा राहुल। क्रांतिकारी प्रवृत्ति में सहजता के साथ-साथ सरस्वती पत्नी-धर्म की राह पर हमसफर बनकर अपना फर्ज बखूबी निभाती रही। देशद्रोहियों को देशनेकाला और देशवासियों को उनकी आजादी मिले, यही तो लक्ष्य था कमलकांत सहाय के समूह का, जिसमें वे एकजुट होकर अपनी सेवाएँ अर्पित करते थे। उसकी सहधर्मी होने के नाते सरस्वती कभी चार-पाँच सदस्यों का खाना बना देती, कभी उनके कपड़े धोकर, सुखाकर उन्हें पहुँचाती, जब भी उनका पड़ाव उस इलाके में होता। जीवन का ध्येय सभी का एक ही था—देश को आजाद करवाना!

आज उसे रिहा किया जाएगा! आजाद देश का आजाद नागरिक जहाँ चाहे जा सकता है। पर वह कहाँ जा सकता है? नौ साल का अरसा लंबा होता है, जिंदगी का एक भाग। जब और क्रांतिकारियों के साथ उसे गिरफ्तार किया गया था, तब वह घर पर ही था। दस्तक देकर, दोनों हाथ हथकड़ियों में जकड़कर जब कोतवाल उसे ले जाने लगे, तब तीन साल का राहुल दोनों हाथ फैलाकर उसकी ओर अपने नन्हे पाँव बढ़ाने लगा। पर जंजीरें कहाँ ढीली होती हैं, कहाँ फासलों को तय कर पाती हैं? वह भी एक कैदी की? वह न अपने बच्चे को सहला सका, न चूम सका, न उसे अपने आगोश में ले पाया। सरस्वती की आँसुओं से तर आँखों में वह सिर्फ आशा-निराशा के बीच में लटकी हुई तस्वीर बन गया, अपने ही कहे-अनकहे शब्दों का कैदी। एक दिन पहले ही तो पत्नी ने पूछा था—'तो क्या जब हम आजाद होंगे, तब हमें कोई तकलीफ, कोई परेशानी नहीं होगी? क्या हमारे नए नेता हमारे माई-बाप बनकर हमारी जरूरतें पूरी करेंगे? हमें कपड़ा, अनाज और बच्चों को शिक्षा की सुविधा दे पाएँगे?'

'हाँ, हाँ.... तब वह सब कुछ मिलेगा, जिसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकतीं। सभी बेरोजगारों को काम, गरीबों को उनकी परिस्थिति के अनुसार सुविधाएँ और जरूरतमंदों को आवश्यकता के अनुसार मुफ्त दवा-दारू, मुफ्त तालीम, और मुफ्त में उनके झगड़े- फसादों को भी निपटाया जाएगा। आजाद देश का हर आजाद आदमी खुशहाल होगा।'

'मुझे विश्वास नहीं हो रहा है ऐसा कुछ होगा। एक सपना-सा लग रहा है।' पत्नी के कहे शब्द उसे याद हो आए....

'सपनों को हकीकत में बदलने के प्रयास में ही तो हम आगे बढ़ रहे हैं। अब कदम पीछे नहीं हटेंगे, जब तक मुकाम नहीं मिलेगा।' कमलकांत ने जोश

भरे शब्दों में कहा था। और उसी समय दस्तक हुई, हथेलियाँ हथकड़ियों में जकड़ी गईं और जैसे कोई बेरहम शिकारी अपने शिकार को ले जाता है, कुछ ऐसी ही स्थिति में कमलकांत को ले जाया गया।

सरस्वती सपने और हकीकत के फासले का गणित जोड़ रही थी। उम्मीदों की नाजुक टहनियाँ तूफानी हवाओं से क्षतिग्रस्त होती हुई दिखाई दीं। कुछ कहने, करने की दूजी राह न सूझी, तो वह कोतवाल के सामने हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाते हुए कहने लगी–'मुझे भी इनके साथ कैदी बनाकर ले चलो, मैं वहीं अपना जीवन बिता लूँगी। यहाँ अकेली रह गई तो जी नहीं पाऊँगी।'

'तुम्हें इसके बारे में सोचने की जरूरत नहीं। तुम्हें अकेले कैसे कोई रहने देगा? आस-पास में ही हमारी कोतवाली है। इतने सारे कोतवाल है, एक न एक तुम्हारी मदद को आएगा, इस बात का वादा रहा। यह देशद्रोही है, इसे तो सलाखों के पीछे रहना होगा...तुम....तुम....'

'थू...थू...थू करती हूँ तुम्हारे मुँह पर, लानत है तुम्हारी सोच पर, जो देश के रखवाले होकर भक्षकों जैसी बातें कर रहे हो। मेरा सतीत्व मेरी ताकत है, मेरा पति मेरा मालिक....और तुम सरकार के पालतू कुत्ते...!'

सरस्वती की आँखों से अविरल आँसू बहे जा रहे थे। वह जाते हुए कमलकांत को निहारती रही, जब तक वह उसकी नजरों से विलीन न हुआ। उसकी आँखों में जैसे खून उतर आया था। जो सपना आँखों ने सजाया, वह टूट गया, सभी कल्पनाएँ हकीकतों से टकराकर चूर-चूर हो गईं–यह कैसा देश है, जहाँ भारत के मक्कार लोग अँग्रेजों के तलुवे चाटते फिरते हैं, अपनी धरती को तिरस्कृत करते हैं, धरती की मर्यादा के भक्षक बनकर उसके आँचल को दागदार करने पर तुले रहते हैं?

ऐसे कई सवाल उसकी सोच के खाली दामन को भरते गए। वह सन्नाटों को चीरने की कोशिश में बड़बड़ाती रही, जैसे किसी सदमे के तहत इजहार हुआ जा रहा हो...! आजाद हिंदोस्तान...न कोई अमीर, न गरीब। हर एक की जरूरत पूरी होगी, मुफ्त दवा-दारू, मुफ्त तालीम, और मुफ्त में इंसाफ...!

बस वक्त ने करवट बदली, जो कुछ उसके पास था, सब-कुछ लुट गया। उसे लगा जैसे वह एक नहीं, अनेक जंजीरों से जकड़ी गई थी। मुफलिसी की जंजीर, भूख की जंजीर, हवस की जंजीर, साँसों की जंजीर...! जंजीरों की कबा में वह घुटन भरे माहौल में जीने के लिए मजबूर हुई थी।

अपने दोनों खाली हाथों की मुट्ठियों को भींचकर उसने देखा, दोनों हाथों

में दुल्हन की चूड़ियों की बजाय लोहे से भी कड़ी अनदेखी जंजीरें थीं। उसने अपने नीचे के होंठ को दाँतों के बीच इतना जोर से दबाया कि होंठ लाली से रंग गए। और वक्त, काल-चक्र के दायरे में घूमता रहा...दो साल भी नहीं गुजरे कि वह सरस्वती न रहकर, एक बदनाम, बदचलन, पागल आवारा औरत के नाम से जानी जाने लगी। बच्चा पुलिस ने हिरासत में ले लिया। पागल औरत परवरिश के काबिल नहीं होती, यही सबब बन गया।

कमलकांत को अपना नाम तक याद न रहा, बस कैदी नं॰ 9 उसकी पहचान बन गई। जेल की कोठरी नं॰ 9 उसका आवास बन गया। वहीं उसे सुकून मिलता और उसी गुमसुम माहौल में वह पड़ा-पड़ा सोचता था कि सरस्वती पर क्या गुजरी होगी? कैसे अकेली जान उन भूखे भेड़ियों और दलालों की दुनिया में जीती होगी? होगी भी या नहीं? न उसे बाहर की दुनिया की कोई खबर देता, न वह अपनी ओर से कोई खबर घर भेज पाता। हर हाल से बेखबर वह जी रहा था। और आज नौ साल बाद उसे आजादी बख्शी गई है, हाथ-पैर खुले कर दिए गए हैं, कोई जंजीर जकड़ने के लिए अब नहीं रही। फकत सोच की अनगिनत जंजीरें उसे याद के खंडहरों की ओर धकेलकर ले जा रही थीं... उसके घर की तरफ, अपने परिवार की तरफ...!

घर तो घरवालों से होता है, अब तो राहुल बारह साल का हो गया होगा और सरस्वती...? सरस्वती की याद आते ही उसकी साँसें महकने लगतीं। वह आँखें मूँदकर जैसे उस महक को अपने भीतर भर लेता। दौड़ते हुए बच्चे के नन्हे पावों की पदचाप उसके जहन में बची हुई याद की परछाइयों को और ज्यादा सायेदार बनाने लगी। अतीत उसके आज से जुड़ने लगा।

'मुझे विश्वास नहीं हो रहा है, ऐसा कुछ होगा। एक सपना-सा लग रहा है। 'पत्नी के कहे शब्द उसे याद हो आए...' 'हाँ, हाँ वह सब-कुछ मिलेगा, जिसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकती। सभी बेरोजगारों को काम, गरीबों को उनकी परिस्थिति के अनुसार सुविधाएँ और जरूरतमंदों को आवश्यकता के अनुसार मुफ्त दवा-दारू, मुफ्त तालीम, और मुफ्त में उनके झगड़े-फसादों को भी निपटाया जाएगा। आजाद देश का हर आजाद आदमी खुशहाल होगा।' यही तो उसने भी उसे सांत्वना देते हुए कहा था। इसी खयाल में डूबा, जेल की चारदीवारी से बाहर आते ही जो रास्ता सामने मिला, वह उसी पर कदम बढ़ाता रहा। सब-कुछ बेगाना-सा, अनजाना-सा लगा। न दिशा का ध्यान रहा, न अपनी दशा का! बस कड़ी धूप के साए में बे-मकसद ही चलता रहा। अचानक ठोकर

खाकर गिरने को था कि एक राहगीर ने उसे थामा और सहारा देते हुए पास ही एक दरख्त की छाँव-तले बिताया।

'भैया लगता है लंबा सफर करते आए हो, थके हुए हो, पानी पीकर थोड़ा आराम कर लो, फिर आगे बढ़ना।' और वह अपनी राह चल दिया। दरख्त की छाँव तले कब कमलकांत की आँख लग गई पता नहीं, पर अचानक एक चीखती हुई आवाज ने उसे जागा दिया।

'लड़ाई हो रही है, आजादी के लिए लड़ाई लड़ी जा रही है। बारूदी बम बरस रहे हैं, घर जलकर रख हो रहे हैं, फसलें तबाह हो रही हैं। लोगों में तहलका मचा हुआ है, लाशें बिछ रही हैं, भूख-प्यास से आदमी मर रहे हैं। उठो...जागो कोई तो उन्हें बचाओ...उन्हें जीने का हक दिलाओ। उनकी जरूरतें पूरी करो...! मुफ्त दावा-दारू, मुफ्त तालीम, मुफ्त इंसाफ दिलाकर बुराइयों से निजात दिलाओ उठो...जागो...!' और चौंककर उठा बैठा कमलकांत। नींद आँखों से रफूचक्कर हो गई। एक रहागीर का दामन थामकर उसने सभ्यता से पूछा—'भाई यह औरत कौन है?'

'अरे क्या बताएँ भाई, एक पागल औरत है। कहते हैं, इसके आदमी को क्रांतिकारी मानकर कोतवाली वाले बेड़ियाँ पहनाकर ले गए! बस, तबसे पागलपन के दौरों ने उसे इस हाल में पहुंचाया है, जहाँ वह न कुछ समझती है, न जानती है, न किसी को पहचानती है। अगर भूले से कोई उसकी मदद को पहुँचे तो वह उसे काट खाने को दौड़ती है, उसे अपने लंबे नाखूनों से लहूलुहान कर देती है।'

वह औरत अपने नारे समाप्त करके शायद थकान मिटाने के लिए ही उसी पेड़ तले ठहर गई। फिर जाने क्या सूझा कमलकांत को, उठकर उसके पास आया और नर्म लहजे में कहा 'अब जंग खत्म हो गई है!' कहते उसकी आँखों से अविरल आँसुओं की धारा बहने लगी और आँखों के कोने सिकुड़ने लगे। औरत ने सर ऊपर उठाया और एक लंबी चिंतामुक्त साँस ली, शायद राहत महसूस की, जैसे सचमुच ही जंग खत्म हो गई थी...।

'अब जंजीरों से मुक्ति मिलेगी, मुफलिसी की जंजीर, भूख की जंजीर, हवस की जंजीर, साँसों की जंजीर, मतलब हर घुटन भरी जंजीर से रिहाई...!' वह बड़बड़ाई।

उसने कमलकांत की ओर देखते हुए कहा—'क्या आजाद देश में भी ये जंजीरें बाकी रहेंगी?' जैसे उसे कुछ याद हो आया...उसके दोनों हाथों की चूड़ियाँ तोड़ दी गई थीं, उसकी माँग से सिंदूर पोंछा गया था....उसे विधवा करार किया

गया...और उसके बाद यही जंजीरें उसे जकड़ती रहीं...मुफलिसी की जंजीरें, भूख की जंजीरें, साँसों की जंजीरें...! और वह बदनाम, बदचलन, आवारा औरत बन गई। उसने अपने दोनों सूने खाली हाथों को मुट्ठियों में भींचकर कमलकांत के सामने फैलाया...! कमलकांत ने न जाने क्या सोचकर, उस औरत के सर पर अपने दोनों हाथ रख दिए, अपनी आँसुओं की धार से उसकी माँग के हर दाग को धो दिया। धीरे से सहारा देकर उसे उठाया, भुजाओं का सहारा देते हुए उसे अपने साथ खड़ा किया...फिर उसकी आँखों में यूँ देखा जैसे वह उसकी आँखों से गले मिल रहा हो। देश की आजादी की खुशी में एक आलिंगन।

फिर जाने क्या हुआ, जैसे मौसम बदला। पागल औरत अपने ही इर्द-गिर्द घूमते हुए खुशी से तालियाँ बजाने लगी—जैसे हवाएँ झूम उठी हों, फूल खिलखिलाने लगे, तितलियाँ उड़ान भरने लगी हों। और वह फिजाओं के साथ सुर-ताल मिलाते हुए बोल उठी—'अब जंग खत्म हो गई है, देश आजाद हो गया है। अब कोई जंजीर बाकी नहीं! आजाद देश में सभी बेरोजगारों को काम, गरीबों को सुविधाएँ, मुफ्त दवा-दारू, मुफ्त तालीम, और मुफ्त न्याय मिलेगा। आजाद देश का हर आजाद आदमी खुशहाल होगा। 'मुक्त हवाओं में दो साथी, आजादी के सलीब को ढोकर, कदम-दर-कदम अनजानी दिशा की ओर निरंतर बढ़ते रहे आगे...और आगे...!

रोशनी लौट आई

ए॰जे॰ उत्तम

सायरन बजा, कुछ पल बजता रहा। चारों तरफ सन्नाटा छा गया। सभी साज-आवाज धीमे पड़ गए, सारा शोर-गुल बंद हो गया। रात अधिक अँधियारी लगी। यहाँ-वहाँ से रोशनी, अंधकार के आगोश में छुपने के लिए ठिकाने ढूँढ़ती रही। मौत का साया अंधकार के आगोश से निकलकर हमारे मकानों पर छा गया। साइरन बजता रहा...बारह घरों के निवासियों से भरा हमारा मकान जल्दी-जल्दी खाली होने लगा, जैसे प्लेग की बीमारी पीछे पड़ी हो।

सच तो यह है कि प्लेग से भी कुछ भयंकर गुजर रहा था। गहरे अँधेरे में जमीन खाली करने का ऐलान हुआ है। अब तक तो सायरन केवल कारखाने में काम करनेवाले मजदूरों के काम पर चढ़ने या फिर शाम की छुट्टी के वक्त सूचना के तौर पर बजते सुना करते थे। लेकिन आज तो यह सायरन इंसान और उसकी तमाम खुदाई को खत्म करने का ऐलान कर रहा था।

पहले तो मुझ पर सायरन का कोई असर नहीं हुआ। जहाँ बाकी लोग साइरन की आवाज सुनकर अपने घरों की बत्तियाँ गुल करके बाहर निकल आए, वहीं मैं अपनी बत्ती जलाकर कमरे में जासूसी नॉवल पढ़ने बैठ गया। मेरी खिड़कियों पर कागज भी चिपके हुए नहीं थे, इसलिए नीचे खड़े लोगों की 'बत्ती बुझाओ...बत्ती बुझाओ...लाइट ऑफ...' की आवाजों की धूम मची हुई थी। अनचाहे मन से अपनी पुस्तक एक तरफ रखकर मैंने बत्ती गुल कर दी।

कमरे में अब पूर्ण रूप से अँधेरा था। हाथों से टटोलते हुए जाकर खिड़की खोली। बाहर देखा, हल्की-सी चाँदनी के साए में आदमियों की टोली खड़ी थी। उनकी नजरें आसमान की ओर उठी हुई थीं। मौत की छाया उनके चेहरों पर मँडरा रही थी। छोटे-छोटे बच्चे अपनी माओं से चिपके हुए थे। औरतें अपने पतियों और भाइयों के करीब सटकर खड़ी थीं। ऐसा लगा जैसे वे सब पत्थर के बुत हों। वक्त खुद एक बड़ा बुत बनकर रुक गया था।

मेरे बदन में खून का संचार तेज हो गया, दिल घबराने लगा। धीरे-धीरे डर की लहर मन में रेंगने लगी, जिससे बचने के लिए कमरे के बीच ही तेजी से टहलने लगा। जाने क्यों महसूस किया जैसे मेरे साथ कोई और भी चल रहा हो, उस भ्रम को तोड़ने के लिए बाहें फैलाकर जाँच की, मगर कोई हो तो मिले! वहीं सिगरेट सुलगाई, पर उससे भी खुद को बहला न सका और आकर खिड़की के पास खड़ा हो गया। बाहर भय कुछ कम हुआ था, शायद इसलिए कि लोगों ने आपस में बातचीत शुरू कर दी थी।

पर मेरे मन में डर दौड़ने लगा। खुद पर हैरानी हुई। आज तक तो कभी भी किसी का डर न रहा, माँ-बाप को अक्सर उलटी-सीधी सुना दिया करता था। उनका भी ध्यान मेरी ओर कुछ कम था, इसलिए पढ़ाई पर भी ज्यादा ध्यान नहीं दिया। खींच-खींचकर मैट्रिक पास की थी। ऑफिस में भी निडरता के लिए मशहूर था। नौकरी पर चढ़ने के तुरंत बाद घर को तिलांजलि देकर अकेला रहने लगा। जब भी किसी लड़की ने मुझे अपने स्नेह से नवाजा, मैं उसमें कोई-न-कोई कमी निकालकर उसको अपने रास्ते से हटा लिया करता था। सच में कोई भी चीज मुझे रास न आती। हर किसी का मजाक उड़ाना, हर एक की खामियाँ निकालना, किसी पर भी विश्वास न करना मेरा स्वभाव बन गया। बस कह दिया करता था। यहाँ कोई किसी का साथी नहीं, सबके सब स्वार्थी हैं। दोस्तों ने तो मुझे सनकी कहना शुरू कर दिया। और मैं भी कहता बहुत अच्छा खिताब दिया है और खूब जोर-जोर से उनके सामने हँस पड़ता।

सायरन बजने के कुछ पल पहले दिल ही दिल में सरकार की ओर से मन मैला होता रहा, जो उन्होंने ऑफिस, सिनेमा, दुकानों को जल्दी बंद करने के ऑर्डर जारी कर रखे थे। रास्तों और घरों में भी अँधेरा कायम करवाया था। मुझे जल्दी घर आकर बैठना मुसीबत लगा। लेकिन इससे पहले तो कोई बात मेरे लिए मुसीबत न थी। कितनी बार दोस्तों ने जंग को मुसीबत जताकर बहस की, पर मैं हमेशा उनका मजाक उड़ाता रहा। 'जंग बिलाशक आए। आदमी जो कीड़े-मकोड़ों की तरह बढ़ रहे हैं, वे अगर खतम न होंगे तो क्या होगा? दुनिया में रखा ही क्या है, भले ही वह तबाह हो जाए!'

लेकिन तबाही जब सर पर आकर मंडराई, तब पहाड़ जैसा मजबूत मेरा मन डाँवाडोल होता महसूस हुआ। मन पर कितना तो गुमान था! मैं अकसर यूँ कहता था। 'मन एक बड़ी दुनिया है, जिसमें जागृति की अनेक स्थितियाँ हैं। इंसान बस उन्हीं का गुलाम रहा है, उस पर बाहरी दुनिया का कोई असर नहीं।'

पर ये क्या हो गया था? बस बाहरी दुनिया का एक ही झोंका मन के मजबूत कोले को गिराने लगा था? बेखौफ होने के सब विचार व्यर्थ से लगे। सायरन की एक ही आवाज ने मेरे भीतर कँपकँपी भर दी। दिल में खौफ की तरंगें उभरने लगीं। बस बम फटेंगे और धरती मुझे निगल जाएगी! और ऐसे ही इस छोटे से घर में दफन हो जाऊँगा! अकेला ही अकेला!

अकेला होने के डर से डरने लगा। तन्हाई मुझे काट खाने को दौड़ती रही, अब तक जिसकी ओर कभी आँख उठाकर नहीं देखा था। मुझे यही समझ नहीं आ रहा था कि बीती ज़िंदगी मैंने कैसे तन्हा काटी। रिश्ते-नातों, यारों-दोस्तों, हर महफिल से खुद को अलग रखकर एक लावारिस-सा बन गया था। प्राय: सोचा करता था कि अकेले मरने में कोई डर की बात न होगी, क्योंकि पीछे कोई रोने-पीटने वाला भी न रहेगा।

जीने के लिए मेरे पास कोई उद्देश्य भी न था। इसलिए जीने की इच्छा कम रही। फिर मौत की हल्की-सी आहट से मुझमें जिंदा रहने की तमन्ना क्यों भड़क उठी, ये नहीं जान पाया। अपनी टाँगों और बाहों पर हाथ फेरकर महसूस किया कि मैं जिंदा हूँ या नहीं।

फिर खिड़की के पास लौट आया। बाहर खड़े लोगों को देखा, जो मौत का निवाला बनने के लिए तैयार खड़े थे। शायद उन सबको चारदीवारी के अंदर अकेले मरना मंजूर नहीं था। इन्सान शायद न अकेला जीना चाहता है, न मरना। ये लोग एक-दूसरे को अलग होते हुए भी एक-दूजे के कितने करीब थे। वे अब अपने लिए नहीं सोच रहे थे, पर सारे देश के लिए सोच रहे थे।

मुझे उन लोगों पर अजब लग रहा था। अभी सायरन बजने के पहले यही लोग अपने घरों में अपनी जरूरतों और गरजों के बारे में सोच रहे थे, एक-दूसरे के साथ लड़-झगड़ रहे थे, खूँखार से हो रहे थे। वह क्रिश्चियन, जो नीचे खड़ा अपने बेटे को चूम रहा है, सायरन के कुछ पल पहले अपनी पत्नी से झगड़ा कर रहा था और उसे 'डर्टी बिच' कहकर पुकार रहा था और वह भी उसे 'बास्टर्ड' कहते हुए एक बार भी नहीं हिचकी। उस जोड़ी ने इन दो खिताबों को इतनी बार दोहराया होगा, जितनी बार शायद उन्होंने ईसा मसीह का नाम याद न किया हो। झगड़े में न जाने कितनी बार एक-दूजे को सलीबों पर चढ़ाया होगा। जिस बच्चे को वे अभी चूम रहे हैं, उसे न जाने कितनी बार 'लड़ते क्यों हो मत लड़ो' कहने पर मारा होगा।

वे दो भाई जो एक ही माँ के जिगर के टुकड़े थे, वैसे तो वे एक-दूसरे

की जान के दुश्मन थे। उन्हें अक्सर एक-दूजे को पुलिस और कोर्ट की धमकियाँ देते सुना था मैंने। उनकी बहन अक्सर उन्हें कहती थी 'भाई झगड़ना बंद करो. ..पैसा-पैसा हो जाएगा, माँ-बापू की लाज रखो। उनकी मौत के बाद तुम्हारा पालन करने के लिए शादी तक नहीं की मैंने।' लेकिन वे दोनों कभी-कभी तो उसे मारने तक से बाज नहीं आते थे। आज वही सब कंधे से कंधा मिलाकर खड़े थे।

और वह परिवार एक स्त्री, दो पुरुष। स्त्री एक की जीवन-संगिनी थी और दूजे की माँ। बेटा निखट्टू और ऐय्याश था, इसलिए बाप-बेटे का झगड़ा होता रहता था। दोनों एक-दूसरे की मौत की दुआ माँगा करते थे और उस वक्त वह स्त्री गिड़गिड़ाकर कहती—'मरे आपके दुश्मन। उस मौत से बचने के लिए तो अपनी जन्मभूमि, घर-बार सब छोड़कर यहाँ आए।'

शायद वही 'मरे दुश्मन' वाला भाव उन सबको आपस में जोड़ रहा था। इसलिए सब छोटे परिवार अपने-अपने झगड़े भुलाकर, दुख-दर्द भुलाकर एक बड़े परिवार के सदस्यों की तरह अपनी कौम की किस्मत के बारे में सोच रहे थे।

मैं भी अकेलेपन और डर से बचने के लिए बाहर निकलकर उनके साथ ही खड़ा हो गया। यहाँ मुंबई में जो पड़ोसी वैसे अपने आपमें व्यस्त रहते थे और राह मिलते भी किसी के साथ कोई मेल-मेलाप नहीं रखते थे, वे अब एक-दूजे के जाने-पहचाने साथी बन गए। अब उनके चेहरों पर डर का नामो-निशान भी नहीं था। बावजूद उसके उन्हें भी देश के लिए चिंता।

इतने में फिर सायरन बजा और कुछ पल बजता ही रहा। रेडियो पर समाचार सूचित कर रहे थे—'दुश्मन के बमबाजों को भगा दिया गया है।'

ऐसे लगा जैसे अंधकार पछाड़ खाकर लौट गया हो और रोशनी फिर से लौट आई हो।

प्रतीक्षा

खिमन मूलाणी

जिस ब्लॉक में हम रहते थे, उसी के कोने वाले क्वार्टर में सूरजमल नाम के एक वृद्ध व्यक्ति रहते थे। उम्र सत्तर साल के ऊपर थी। ज्यादातर सब लोग उन्हें 'काका' कहकर पुकारते थे। वे अक्सर बीमार गुजारा करते थे, इसीलिए कोई काम-धंधा नहीं करते थे। दिन भर घर में ही बैठे रहते थे। बेटे व पोते कमाकर लाते थे, जिससे घर की गाड़ी चल जाती थी।

काका धोती पहना करते थे और ऊपर से आधी बाँह वाली सिंधी कमीज पहनते थे। सिर पर सिंधी टोपी रखकर, उस पर पटका बाँधते थे। मैं जब भी भाजी लेने के बहाने या किसी अन्य काम से उनके घर के पास से गुजरता था तो वे अक्सर मुझे हँसकर सहर्ष आवाज देते–'भाई साहब, राम-राम।'

'राम-राम काका, राम-राम।' मैं वापसी जवाब देते हुए निकल जाता था।

काका अपनी उत्कृष्ट इच्छा मिटाने के लिए मुझसे बतियाना चाहते थे, पर मैं व्यर्थ ही वक्त गँवाना नहीं चाहता था। हकीकत तो यह थी कि मैं उनकी बातों से ऊब जाता था। इसीलिए कभी-कभी तो मैं दूसरे रास्ते से निकल जाता ताकि काका के मुँह न लगूँ।

एक दिन मैं काका के घर के पास से गुजर रहा था, तो मुझे उनकी आवाज सुनाई नहीं दी। मेरा ध्यान उस ओर चला गया और मैं रुक गया। मैंने 'काका' के घर की ओर देखा। वे अपनी पुरानी जर्जर खाट पर रोज की तरह हुक्का मुँह में लगाए आँगन में बैठे थे; और निरंतर सामनेवाली दीवार को तक रहे थे। मुझे यूँ आभास हुआ कि काका किसी सोच में डूबे हुए थे। मैंने उनकी ओर कदम बढ़ाते हुए उन्हें आवाज दी–'काका, राम-राम!'

काका का ध्यान मेरी ओर न था। मुझे अचरज हुआ। आगे बढ़ते हुए मैं उनके करीब जाकर खड़ा हो गया। मैंने देखा काका की आँखें नम थीं। मैंने फिर से कहा, 'काका, राम-राम!' काका के रवैये में तब भी कोई परिवर्तन नहीं आया।

मुझे शक होने लगा कि काका कहीं इस दुनिया से रवाना तो नहीं हो गए हैं। मैंने उनके कंधे पर हाथ रखते हुए कुछ जोर से कहा, 'काका...हरे...राम!'

मेरी आवाज पर काका चौंक पड़े। जैसे उनकी समाधि में भंग पड़ा हो। हैरान निगाहों से मेरी ओर देखने लगे और मैं उन्हें देखकर मुस्कराने लगा। काका ने भी जबरन अपने चेहरे पर मुस्कान लाते हुए अपने अँगोछे के पल्लू से आँसू पोंछते हुए कहा, 'आओ बेटे, आओ बैठो, बहुत दिनों बाद आए हो!'

मैं बिना कुछ कहे, एक आज्ञाकारी बालक की तरह चुपचाप उनके बाजू में बैठ गया। मैं अब भी हैरान था यह सोचकर कि हमेशा खुश रहनेवाले 'काका' आज इतने गमगीन क्यों हैं? काका फिर भी शांत रहे, पर मुझसे रहा न गया। इसलिए शांति को भंग करते हुए उनसे पूछा। 'काका क्या हाल-चाल है?'

खुद को सँभालते हुए काका ने कहा–'सब ठीक-ठाक है बेटा!' मुझे उनके उत्तर से कोई संतोष न हुआ। बस दूसरा सवाल करना चाहा। पर काका?'

काका ने मुझे अपना वाक्य पूरा करने नहीं दिया। कहा–'बस बेटा ऐसे ही पुरानी यादें दिल में तैर आईं और मन भर आया। दुनिया देखी है, बहुत ही पाया और गँवाया है। पर बेटा, गँवाने का दुख तो हर इन्सान को होता ही है।'

मैं उनकी बात का अर्थ पूरी तरह से समझ नहीं पाया। मैं जानने को उत्सुक हुआ कि उनकी ऐसी कौनसी चीज गुम हो गई है कि वे इतने विचलित हुए हैं। पर मैं अपनी सोच शब्दों में जाहिर नहीं कर पाया। बस इतना ही कहा,'काका, आपकी कौनसी चीज खोई है?'

काका ने जवाब देते हुए कहा–'बेटे, मैंने एक बहुमूल्य वस्तु गँवाई है।'

'ऐसी कौनसी चीज है वह?' मैंने दुबारा पूछा।

काका ने ठंडी साँस लेते हुए कहा–'बेटा, मैंने अपनी जन्मभूमि गँवाई है। जन्मभूमि जो स्वर्ग से भी महान होती है।'

मेरी हँसी फूट पड़ने को थी, पर मैंने उसे दबाए रखा। कुछ पल रुककर कहा–'काका, पर यह तो विभाजन के बाद की बात थी। अब तो 1971 चल रहा है। विभाजन को पूरे 24 साल होने को हैं, आप अभी तक सिंध को याद कर रहे हैं!'

'सच कहते हो बेटे, पर जहाँ आग लगती है वहीं तपिश महसूस की जाती है। किसी और को क्या पता कि पीड़ा क्या होती है।'

ऐसा कहकर काका मेरे चेहरे की ओर देखते हुए कहने लगे। 'पता है; रात मैंने एक सपना देखा है। ऐसा सुंदर सलोना सपना मैंने जिंदगी में पहले कभी

नहीं देखा है। क्या देखता हूँ, मैं हैदराबाद स्टेशन पर जाकर उतरा हूँ। स्टेशन देखकर जो खुशी मुझे हुई, मैं बयान नहीं कर सकता। एक-एक आते-जाते आदमी को गौर से देखता हूँ। ऐसे जैसे मैं पागल हो गया हूँ। अचानक देखता हूँ कि हमारे गाँव का दुलारा खान मेरे सामने खड़ा है; और वह मुझे घूरे जा रहा है। उसे देखते ही आँखें घूमती हुई उसपर ठहर गईं। खींचकर उसे गले से लगाया। फिर तो वह गले लगकर रोने लगा; जोर-जोर से सिसकियों के बीच जैसे उसकी आवाज बँध गई। मैं भी रोने लगा तो लोग जमा होने लगे। सभी पूछने लगे कि माजरा क्या है? क्या हुआ? मैं उन्हें क्या बताता कि क्या हुआ! आखिर कहा—'भाई बरसों बाद मिले हैं...इसी कारण आँखें भर आई हैं।' लोग तो चले गए, पर दुलारा भूली-बिसरी यादों के किस्से ले बैठा।

'यार, तुम्हारे जाने के बाद हम तो पीड़ाओं से घिर गए हैं। आप तो हमें नितांत अकेला करके चले गए। अब तो परदेसियों की जोर-जबरदस्ती ने हमें चूर-चूर कर दिया है। हमारे साथ अपने ही देस में परदेसियों जैसा सुलूक किया जाता है। हमारा जीना हराम कर रखा है।

कुछ रुककर कहने लगा—'सूरजमल, आपको यहाँ से जाना ही नहीं चाहिए था।'

ऐसा कहकर काका कुछ पल रुके और फिर बात जारी रखते हुए कहा—'बेटा, सच पूछो तो दुलारे की वह पहले सी प्रीत और लगाव देखकर मन खुश हो गया। इसी तरह बातें करते-करते हमने गाँव के दो टिकट लिए और आकर गाड़ी में बैठे, 'काका बात करते-करते रुक गए।

'फिर क्या हुआ काका...?' मैंने पूछ लिया।

काका ने मेरी ओर कुछ इस तरह देखा जैसे वे मेरा चेहरा पढ़ रहे हों। पल भर के पश्चात् ठंडी साँस लेते हुए कहा—'फिर न जाने क्या हुआ बेटे। दुर्भाग्यपूर्ण नींद खुल गई। डायन नींद की प्रवृत्ति ही शायद ऐसी है। ससुई से पुन्हल को छीना और मुझसे मेरी जन्मभूमि का दीदार।'

मैंने कहा—'काका, कभी सपने भी सच होते हैं? सबसे बड़ी बात यह है कि हम जो यहाँ पैदा हुए हैं, पले-बढ़े हैं, अगर सिंध लौट भी जाएँ तो क्या हमें यह अपना वतन याद नहीं आएगा? और फिर, वहाँ जो हमारी तरह नई नस्ल पैदा हुई होगी, उनकी दिलों में क्या आपके लिए वही प्यार, मुहब्बत व इज्जत होगी?'

काका को मेरी बात न भाई, कहने लगे—'छोड़ो बेटा, इन बातों को।

बताओ मुल्क का क्या ताजा समाचार है?' काका ने बात बदलने के लिए मेरी ओर एक नया सवाल उछाल दिया।

'सब ठीक है काका। मुल्क ऐसे ही चल रहा है जैसे चलता है।' मैंने कहा।

काका सोच में पड़ गए कहने लगे–'क्या तुम समझते हो कि फिर सिंध में लौट जाना होगा?'

'नहीं काका, मुझे तो नहीं लगता, फिर भी मौला जाने।' मैं काका के दिल को दुखाना नहीं चाहता था।

'नहीं बेटा, ऐसे मत कहो। वक्त बड़ा बलवान है, रब बड़ा मेहरबान है; वह चाहे तो क्या नहीं कर सकता। मेरी आत्मा कहती है कि जाएँगे जरूर।' ऐसे कहते हुए बाबा के चेहरे पर अनोखी रौनक छा गई।

मैंने उनकी ओर देखते हुए कहा–'काका, इस बात की संभावना बहुत कम है।'

यह सुनकर पहले तो वे विचार में पड़ गए, फिर सर उठाकर कहने लगे। 'सच कह रहे हो बेटा, मगर मेरा दिल नहीं मानता। मेरा मन कह रहा है कि हम सिंधी एक दिन जरूर अपनी जन्मभूमि पर जाकर बस जाएँगे।'

'काका, ये तो सब जज्बाती बातें हैं। सच पूछिए तो आपको सिंध छोड़ना ही नहीं चाहिए था।'

'हाँ बेटा, पर मैंने जन्मभूमि अपनी मरजी से नहीं छोड़ी! हालात ही कुछ ऐसे बनते गए।' काका ने अपनी मजबूरी बताई।

'हालात में तो ठहराव जरूर आ जाता! जल्दबाजी करने की क्या जरूरत थी?'

'अरे बेटे, मैंने सिंध सदा के लिए तो नहीं छोड़ी थी। पता है, सन् 1946 में, गाँव में महल जैसा ही नया घर बनाया था। सभी रोक रहे थे कि क्यों बेकार का खर्च कर रहे हो। अब हमें हिंदोस्तान चलना पड़ेगा। मैंने किसी की नहीं सुनी। सभी से यही कहा–'पागल हो गए हो। कभी किसी ने अपना घर भी छोड़ा है? हम सदियों से यहाँ रह रहे, पले-बढ़े हैं, फिर कैसे अपनी जन्मभूमि छोड़ेंगे? उस समय भी सभी मुझ पर हँसते थे; जैसे आज तुम हँस रहे हो?'

ऐसा कहते ही काका की आँखों में फिर से आँसू उमड़ आए; कुछ रुककर फिर जैसे खुद से बतियाने लगे–'अपना महल जैसा बसा-बसाया घर ऐसे ही छोड़ आया। ताला लगाकर, चाबियाँ अपने दोस्त बड़े गुल मुहम्मद को दीं और

कहा—'हम तीर्थ करने हिंदोस्तान जा रहे हैं, जल्द ही लौट आएँगे। तब तक ये चाबियाँ सँभालकर रखना।'

'फिर लौटकर क्यों नहीं गए?' मैंने पूछा।

'मैं तो जाना चाहता था, पर नाते-रिश्तेदारों ने, घरवालों ने जाने ही नहीं दिया। कहने लगे, हालात अब भी खराब हैं, वहाँ जाकर क्या करोगे? बस ऐसे ही मजबूर हो गया।' काका कहकर चुप हो गए।

'काका, इन बातों को अब दिल से निकाल ही दें।' मैंने सुझाव दिया।

काका ने एक लंबी साँस ली, फिर मेरी ओर देखते हुए कहा—'बेटे, तुम मुझे लाख बार समझा लो, पर मेरा दिल भी तो माने न! बार-बार शाह के कलाम कानों में गूँजते रहते हैं।'

मैंने काका के भीतर की पीड़ा को महसूस करते हुए उन्हें सांत्वना देने के इरादे से कहा—'काका, सच कह रहे हैं आप, दिल की लगी बुरी बला है।'

'बेटे, तुम चाहे कैसी भी बातें कर लो, पर मुझे विश्वास है कि मैं मरूँगा तो अपने वतन में, अगर ऐसा नहीं हुआ तो मैं वसीयत बनवाऊँगा कि मेरी खाक सिंध नदी में परवान की जाए, तब तक मैं अपनी जन्मभूमि के बिछड़ने का दर्द सीने में सँजोकर, उसके दीदार की प्रतीक्षा करता रहूँगा।'

मैं चुपचाप काका के चेहरे को घूरता रहा; और उसके दिल के दर्द में खुद को डूबता हुआ महसूस करता रहा। मेरे मुँह से एक अक्षर भी नहीं निकल पाया।

मासूम यादें

कमला मोहनलाल बेलानी

इक सोज भरी कहानी, खून के आँसू बहाती हुई रागिनी बनकर मेरे अंतर को चीरती रही। मेरे अंदर से ये आवाज आलाप बनकर कह रही है, तुमने ऐसा क्यों किया? क्यों इंसानियत का खून किया?

मैं रोती हूँ...तड़पती हूँ...नैनों से अँसुवन का आबशार बहाती हूँ...बावजूद इसके जग में जीती हूँ। मैंने उसको बार-बार चूमा। उसकी उँगलियों को अपनी उँगलियों से उलझाकर स्पर्श महसूस करती रही। वह शर्मा जाता था। उसकी शर्मीली मुस्कराहट पर मैं अपना सर कुर्बान करने को तैयार थी। नहीं जानती थी कि उसकी आँखों में कौनसा जादू भरा था। चाहती थी कि मैं उसकी आँखों में बस जाऊँ, वो आँखें बंद कर ले और मैं उनमें समा जाऊँ।

उसने मेरे गालों पर अपना हाथ फेरा था। मेरी आँखों-से-आँखें मिलाई थीं। खामोश जुबाँ से ये भी कहा था–'हमारा संबंध जनम-जनम का है।' मैंने बार-बार उसका नाम पूछा था, पर वह मेरी तरफ देखकर सिर्फ मुस्कराता था। शायद चेहरे की मुस्कान ही उसका नाम था।

मैं हर शाम बाग में जाती रही, उसका इंतजार करती रही। न कभी मैंने और न उसने नागा किया। मौके से अगर रास्ते में मिल जाता था, तो वह अपना हाथ मेरी तरफ बढ़ा देता था और यक-ब-यक मेरे मुँह से निकल जाता था–'मैं तो तुम्हारी तरफ आ रही थी।' एक अजीब कशमकश थी, एक अनोखी प्रीत थी।

एक शाम वह बगीचे में देर से आया। मैं बाग के कोने में एक मुँडेर पर बैठी थी। वह मेरी तरफ बढ़ा और कदम की रफ्तार बढ़ाते हुए आकर मेरे गले से चिपट गया।

कुछ आदमी हमारी तरफ बढ़ रहे थे। वह उनको देखकर सुबकने लगा और मैंने उसे अपनी बाहों के घेरे में और ज्यादा कस लिया। मैंने ऐसे महसूस किया जैसे हम दोनों एक हो गए हैं। अजनबी बढ़ते रहे–जैसे वे नजदीक आते

रहे वैसे ही वह मेरी छाती से बेल की तरह चिपकता रहा। मैंने उनसे पूछा–'आप मेरी तरफ इस तरह शोर भरी निगाहों से क्यों देख रहे हैं?'

एक ने कहा–'यह हरिजन है।'

दूसरा बोला–'यह गूँगा है।'

तीसरे ने कहा–'अनाथ बालक है। आश्रम से भाग आया है।'

मेरी बाहें ढीली पड़ गईं। मेरी मासूम मुहब्बत का महल पल में ढेर हो गया। उफ! मैंने हरिजन बालक को गले से लगाया था। उसने मेरे गालों पर हाथ फेरा था। मैंने उसके गालों को चूमा था।

मैं सारी रात रोती रही, गीली आँखों से दूर गगन की ओर देखती रही। तारे-सितारे टिमटिमा रहे थे। एक तारा आसमान की छाती से टूटकर तेज रफ्तार से गिरता हुआ गायब हो गया। मेरे सीने से सर्द आह निकली। दिल के दर्द की रफ्तार बढ़ती रही, महसूस किया जैसे कोई भारी भरकम वजन मेरी छाती पर पड़ा हो। दर्द के दबाव को मैं झेल नहीं पाई। खुश्क लबों पर जीभ फेरी, सिसकी को रोकने की कोशिश की, पर अनायास वो बाहर आई। लगातार सिसकियों की आवाज पर मेरे घर के सदस्य नींद से जाग उठे।

पति ने पूछा–'क्यों क्या हुआ?'

सास ने कहा–'कहाँ पर दर्द है?'

मैंने होश सँभालते हुए उनसे कहा कि मैं बिलकुल ठीक हूँ। वे जाकर आराम से सो गए। दूसरे दिन मैं दस्तूर के मुताबिक बाग में गई। वह नहीं आया। उसके बिना सारा चमन उजड़ा हुआ लगा।

माली क्यारियों को जड़ से उखाड़कर फेंक रहा था। नजर उठाकर उनकी ओर देखा तक नहीं, शायद वे मुरझा चुके थे। बदजेब हो गए थे, वे फूल, गोया बाग में उनकी जरूरत ही न रही।

सामने तालाब के पानी में कमल का फूल गर्दन ऊँची किए खड़ा था। उस फूल के सामने शायद और फूल शरमा रहे हों, क्योंकि कमल निर्लेप है, पवित्र है। ऐसे पाक फूल के आगे और किसी फूल की महक का क्या महत्त्व! संसार का चलन ही ऐसा है। मैं ब्राह्मण हूँ और वह हरिजन का अनाथ बालक और गूँगा!

ये मुरझाए फूल अपनी कहानी कमल फूल को सुना नहीं सकते, क्योंकि वे बेजुबान हैं, हरिजन हैं, अनाथ हैं।

मैंने हरिजन आश्रम में कदम रखा। गांधी का अमर पुतला देखा। उनके

हाथ में लकड़ी देखी...उनके कदम देखे, उनकी आँखों से आँखें मिला न सकी।

मेरी वेशभूषा देखकर हरिजन बच्चे सहमे से अपने कमरों की ओर दौड़ने लगे। मुझे उसकी तलाश थी। मैंने एक सेवक से पूछा–'वो कहाँ है जो हर शाम बाग में आता था?'

जवाब मिला–'कौन? क्या वही गूँगा हरिजन अनाथ बालक, जो शाम को प्रार्थना के वक्त गायब हो जाता था?'

मैंने कहा–'प्रार्थना से प्रीत प्यारी समझी होगी। इस सबब चला आता था, मैं उसी की तलाश में हूँ।'

सेवादार ने उत्तर में कहा–'वो आपको अब फिर नहीं मिलेगा। कल शाम जब उसे बाग से पकड़कर ले आ रहे थे, तो बीच रस्ते में वह हाथ छुड़ाकर भागा और मोटर के नीचे आकर मर गया।'

मुझपर अनायास कौंधती बिजली बरसी। ठंडी आह भरते हुए होश सँभाला और घर लौट आई। उस पल से मेरे नैनों की नींद अधूरी है। हर रात गांधीजी की लाठी की ठक-ठक सुनती हूँ। धीरे-धीरे वह आवाज मेरी कानों से दूर होती जाती है। जितनी दूर वह आवाज जाती है, उतनी ही वो मेरे दिल के करीब होती जाती है। काश! ये बापू की अधूरी कहानी, लेखकों और शायरों की कलम की नोक तक नहीं, बल्कि उनके सीने की गहराइयों तक पहुँचे, और समाज के ठेकेदारों के दिलों में हलचल मचाए।

निर्वासन

जेठो लालवाणी

उसके हाथ तेज रफ्तार से काँप रहे थे, चेहरा जर्द हो गया था। दिल की धड़कन रक्तवाहिनी धमनी की तरह चल रही थी। हाथ में टेलीग्राम थामे वह दरवाजे की चौखट पर खड़ा था।

'आप वहाँ क्यों खड़े हैं, अंदर चलो, बाबा को ले आने की तैयारी भी तो करनी है।' उसकी पत्नी आसूदी ने कहा।

पर वह खामोश खड़ा रहा, उसकी आँखें टेलीग्राम में गड़ी रहीं।

'आप सुन नही रहे, भीतर अम्मी भी आपको आवाज दे रही है।' आसूदी ने एक बार फिर दोहराया।

मगर वह इस बार भी ख़ामोश रहा। आसूदी कुछ नाराज होती हुई आगे बढ़ी और उसके हाथ से टेलीग्राम छीन लिया। रमेश को जैसे झटका लगा और उसने सवाली निगाहों से आसूदी की ओर देखा।

'आपको क्या हो गया है? सब खैरियत तो है?' आसूदी ने गंभीर होते हुए पूछा।

'आसूदी...बाबा'...रमेश के मुँह से सिर्फ इतना ही निकला।

'बाबा को क्या हुआ है?' आसूदी ने उतावलेपन में पूछ लिया।

सच से वाकिफ होते ही आसूदी सिर्फ इतना कहकर 'ऐसा हो नहीं सकता...ऐसा' जोर से चीखी और शोकयुक्त हालत में चक्कर खाकर वहीं गिर पड़ी।

'आसूदी...आसूदी...' कहते हुए उसने आसूदी को सँभालने की कोशिश की, पर उससे पहले ही वह बेहोश होकर फर्श पर गिर चुकी थी।

आसूदी की सास ने उसे होश में लाने की कोशिश की। ननद ने चेहरे पर पानी के छींटे फेंके, पर न आसूदी होश में आई और न उसकी हालत में कोई परिवर्तन आया।

'हे राम! मेरी बहू को यह क्या हो गया?' आसूदी की सास ने अपनी व्याकुलता जाहिर करते हुए कहा।

इतने में आसूदी का देवर तुलसी डॉक्टर को ले आया। आसूदी को पलंग पर लिटाया गया। डॉक्टर ने तपास के बाद बेहोशी का कारण 'गहरा सदमा' कहकर उसे इंजेक्शन लगाकर होश में लाने की कोशिश की।

परिवार के सभी सदस्य सवाली निगाहों से रमेश की ओर देख रहे थे, पर वह खामोश खड़ा रहा। कुछ देर में आसूदी होश में आते ही बड़बड़ाई।

'बाबा...ये सब क्या हो गया?'

आसूदी की सास ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए बेटे की तरफ सवाली निगाहों से देखा।

रमेश ने एक नजर घर के सदस्यों की ओर देखते हुए उन्हें तार दिखाया। 'बाबा को चार दिन पहले कपास के कारखाने से आधी रात के समय अगवा कर ले गए हैं और उनकी जान बख्शने के एवज में दस लाख की माँग कर रहे हैं। ऐसी जानकारी बाबा के दोस्त सेठ रामचंद ने मीरपुर से तार के जरिए भेजी है और पैसे आज की तारीख में पहुँचाने हैं, यह बताया है।'

खबर सुनते ही घर के सभी सदस्य स्तब्ध हो गए। सभी के चेहरे उदासी के कोहरे में ढक गए और वे खामोशी से एक-दूसरे को निगाहों ही निगाहों में कुछ पूछ रहे थे!...

'अब क्या होगा?'

आज शाम सेठ टोपणदास की इकलौती बेटी की शादी है। घर में बारात आने का वक्त हो रहा है। घर में खुशी का माहौल, सभी गीत-संगीत की तैयारियों में लगे हुए हैं। आज शाम की फ्लाइट से सेठ टोपणदास बेटी के कन्यादान के लिए पहुँचनेवाले थे। उनके बेटे-बहू उन्हें हवाई अड्डे से ले आने के लिए सब तैयारियाँ कर चुके थे।

ऐसे ख़ुशी के मौके पर अचानक यह मनहूस खबर पोस्टमैन ले आया और तार पढ़ते ही सबके हाथों से उत्सुक परिंदे उड़ गए।

'भाऊ, अब क्या होगा?' छोटे भाई तुलसी ने चुप्पी तोड़ते हुए कहा।

'बेटा, तुम्हें आज ही मीरपुर जाना चाहिए, इनकी जान को ख़तरा है।' रमेश की माँ मूली ने लरजते लहजे में कहा।

'अगर मैं गया तो शाम को शादी कैसे होगी?'

'भाऊ, मैं तब तक शादी नहीं करूँगी, जब तक बाबा नहीं आते!' मोहिनी

ने भाई से विनती करते हुए कहा।

'बहन, ये तुम क्या कह रही हो? घर में बारात के आने का समय हो गया है, अगर तुमने शादी से इंकार किया तो हम लड़के वालों को क्या मुँह दिखाएँगे? बहन अगर घर की चौखट से बारात लौटी तो समाज में काफी बदनामी होगी।'

'मुझे किसी की परवाह नहीं है। आप लड़के वालों को तार दिखाकर उन्हें हकीकत से वाकिफ करा दीजिए, मुझे विश्वास है कि वे हमारी मजबूरी को समझ जाएँगे।'

'पर शुभ मुहूर्त को टालना और दरवाजे से बारात को लौटाना तो अच्छा शगुन नहीं होता!'

'मैं कुछ भी नहीं जानती, अगर बाबा न आए तो मैं शादी नही करूँगी।' मोहिनी ने रोते हुए अपनी भाभी की गोद में मुँह छिपा लिया।

आसूदी ने मोहिनी को प्यार से आगोश में लेते हुए कहा–'बेटे, ब्याहती लड़की को इस तरह रोना नहीं चाहिए। दिल को मजबूत करो, सब ठीक हो जाएगा।'

'पर भाभी...बाबा' मोहिनी ने सुबकते हुए कहा और रोने लगी।

'बेटी, तेरे बाबा को कुछ न होगा, तुम शांत हो जाओ।' मोहिनी को समझाते हुए मूली ने कहा।

'अम्मा, मुहूर्त किसी भी हालत में टाला नहीं जा सकता। आसूदी, तुम मोहिनी को भीतर ले जाओ, और फिर फ्लाइट भी तो सुबह की है, मेहमानों के स्वागत की तैयारी कीजिए, तब तक मैं टिकट का बंदोबस्त करके आता हूँ।' रमेश ने सभी को अंदर जाने को कहा।

'अम्मा, बाबा को कुछ न होगा, आप कोई भी चिंता न करें।' कहते वह पाँव छूकर घर के बाहर निकल गया।

मूली गुरु बाबा की मन्नत मानते हुए, जपसाहब की पौढ़ी पढ़ते-पढ़ते अपने कमरे की ओर चल पड़ी।

देश के बदनसीब विभाजन के वक्त सेठ टोपणदास ने भी हिंद में आने का प्रयास किया था, पर उनके अधेड़ माता-पिता अपनी जन्मभूमि सिंध को छोड़ने को तैयार ही नहीं हुए। टोपणदास उस वक्त नौजवान थे, उन्होंने अपने माता-पिता को भारत चलने के लिए काफी समझाया, पर उन्होंने अपने प्राण सिंध में ही त्यागने का अटल इरादा कर लिया था। उनके बाकी रिश्तेदार, पास-पड़ोस

वाले निर्वासित होकर चले गए।

हुकूमत के हालात अनुकूल न होने के बावजूद वे वहीं रह गए। माहौल में कघैमी तंगदिली फैली हुई थी। गैरसलामती के दौर में उन्होंने अपना जीवन बिताना शुरू किया। अपनों से बिछड़ने के गम पर उन्होंने काबू पाना शुरू किया। वक्त अपनी तेज रफ्तार से चलता रहा। टोपणदास के माता-पिता समय के साथ स्वर्गधाम पधारे। पैसे कमाने की होड़ ने उससे अपनों को याद करने की तौफीक छीन ली। हुकूमत के हालात अनुकूल न होने के बावजूद उसे अपने फैले हुए कारोबार और कमाई हुई जमापूँजी में बेसलामती के दौर में भी अपनी सलामती नजर आने लगी। उस वक्त उसका एक ही इरादा था, कारोबार बढ़ाना और पैसे इकट्ठे करना। उसने पड़ोसियों, कर्मी-मजदूरों और हुकूमत के निवासियों के साथ अपना रिश्ता बेहद पुख्ता कर रखा था।

अचानक शांत माहौल में एक जोरदार तूफान उठा। हुकूमत में चोरियाँ, मार-धाड़, लूटमार और अगवा करने की वारदातें सामने आईं। सभी बसे हुए धनवानों के दिलों में आतंक का डर छा गया। गैरसलामती का सर्प एक बार फिर फुफकारने लगा। कुछ को तो साँप ने डस लिया था।

हुकूमत में मार्शल लॉ और फौजी दौर चालू रहने के बावजूद अगवा करने-कराने और होने के हादसे होते रहे, कभी किसी मासूम, कभी किसी कारखाने के मालिक की लाश उसके कारखाने से ही मिली, तो कभी कोई जमींदार अपने फार्म में मरा हुआ पाया गया। कुछ पैसे वालों ने तो मुँहमाँगी रकम देकर अपनी जान बख्शा ली थी। मतलब कि हुकूमत की दहशत चारों ओर फैली थी। हिफाजत के लिए सख्त बंदोबस्त भी किया गया था। कारनामों में दिन दुगुनी रात चौगुनी बढ़ोतरी हो रही थी।

लाचार होकर एक बार फिर नागरिकों ने खुद को निर्वासित करना शुरू कर दिया। हुकूमत से पासपोर्ट और वीजा निकलवाकर भारत की ओर रुख किया। अपने व्यापार को समेटकर, करोड़ों की जायदाद मिट्टी के दाम बेचकर, हमेशा के लिए अपनी जन्मभूमि को अलविदा करके, खुद आकर अहमदाबाद, सिकंदराबाद और अन्य शहरों में ठिकाना पाया।

हालाँकि टोपणदास की सियासती लोगों में एक खास पहचान थी, उसके अपने बॉडीगार्ड थे, पर उन दहशत-अंगेज कार्रवाइयों ने उसके दिल को भी दहला दिया था। वह पल-पल खुद को नामहफूज पाने लगा। उन दहशत की वारदातों का वह कभी भी निवाला बन सकता था। कोई अनचाहा हादसा हो

उससे पहले वह भी वहाँ से निकलने का इरादा करके, हमेशा के लिए सिकंदराबाद में खुद को बसाने के लिए मनसूबे बना बैठा। उसने अपने घर के सभी सदस्यों के पासपोर्ट और वीजा तैयार करवाए और सुविधा से बारी-बारी अपने परिवारवालों को भारत भेजता रहा। अपने समस्त परिवार की जवाबदारी रमेश ने सँभाल ली और आज उसकी बहन की शादी थी। सेठ टोपणदास इस वक्त मीरपुर में अकेला रह रहा था। बाकी कारोबार समेटकर वह भी बच्चों के साथ निश्चित रूप से रहने और अपनी बेटी का कन्यादान करने के लिए आज की फ्लाइट से सिकंदराबाद पहुँचनेवाला था।

पर अचानक यह मनहूस तार, सेठ टोपणदास के अगवा होने की खबर ले आई!

दो घंटों के उपरांत रमेश हवाई जहाज की टिकट लेकर घर लौटा। बारात घर आ चुकी थी। गम को दिल में दबाकर वह भी मेहमानों की आवभगत में लग गया।

शहनाई के सुरों में, विवाह के गीतों की आवाज में, हँसी-मजाक भरे ठहाकों के बीच दूल्हे-दुल्हन की विवाह वेदी पर पूजा शुरू हुई। लड़केवालों के चेहरे खुशी से खिल उठे थे। माहौल में अलग-अलग किस्म के इत्र, फूल और इंपोर्टेड सेंट की सुगंध फैली हुई थी। ऐसे खुशनुमा, दिलफरेब माहौल में लड़की वालों के चेहरे मुस्करा रहे थे, पर मन-ही-मन एक अनजान डर धीरे-धीरे उन पर हावी होता जा रहा था।

अचानक रूम में टेलीफोन की घंटी जोर-जोर से बजनी शुरू हो गई। रमेश ने भीतर जाकर टेलीफोन उठाया, जहाँ उसे सुनाया गया कि मुकर्रर वक्त की माँग के अनुसार रकम न मिलने पर सेठ टोपणदास का कत्ल करके, उसकी लाश कपास के कारखाने पर छोड़ गए हैं। खबर सुनते ही रमेश के हाथ से फोन गिर पड़ा। वह लड़खड़ाने लगा। वेदी पर मंत्रों के उच्चारण ने उसे सँभलने का मौका दिया। वह भारी कदमों से कमरे से बाहर निकलकर पंडाल में आया। उसकी बहन अग्निकुंड के चारों तरफ अपने जीवनसाथी के साथ फेरे लगा रही थी। लड़के वाले खुशी से नाच रहे थे, गा रहे थे। उसने एक नजर भर बहन की ओर देखा। दोनों की आँखों से आँसू झर-झर बह रहे थे।

शहनाई की आवाज तेज होती गई। रमेश को अपने पैरों तले जमीन खिसकती महसूस हुई और वह खुद को अग्निकुंड में से निकलते हुए धुएँ में गुम होते हुए महसूस कर रहा था।

जुलूस

इंदिरा वासवानी

जुलूस आजादी के दिन ही बाबा का सुबह सवेरे देहांत हुआ, वैसे उसके पहले दिन उनकी तबीयत इतनी खराब न थी। खराब क्या, बिलकुल कुछ भी न था, पर अचानक ही बाबा ने आधी रात को बेचैनी महसूस की थी। दादा, ताऊ दोनों ने बिना समय गँवाए उन्हें हॉस्पिटल में दाखलि करा दिया। ताऊ ने मारुती इतनी तेज चलाई कि हॉस्पिटल पहुँचने में चार मिनट से ज्यादा न लगे। डॉक्टरों ने जाने कितने प्रयास किए, सुइयाँ लगाईं, पर बाबा को बचाने की हर कोशिश नाकामियाब रही।

ताऊ की जान-पहचान का विस्तार वैसे भी बड़ा है, दादा तो है ठंडे घड़े की तरह, धूप में रखो या छाँव में, पानी हमेशा ठंडा रहता। ताऊ ऐसे नहीं! वकालत के काम में काफी निपुण हैं और राजनीति के खेल में भी माहिर हो रहे हैं। वह भी जबसे सरकारी पार्टी में उनका एक खास मुकाम बना है, उनकी बहुत चलने लगी है।

बाबा के देहांत पर माँ शांत ही रही, दादा की आँखों के आँसू थमने का नाम नहीं ले रहे थे, बाकी ताऊ ने खुद पर जाब्ता रखने की भरपूर कोशिश जारी रखी।

कितनी गुरबत में दिन गुजारे थे। टूटी हुई चप्पल और सिलाई की हुई कमीज पहनकर ताऊ स्कूल जाते थे। ताऊ जितने ही पढ़ने में होशियार थे, उतने ही बात करने में भी रहे। कभी-कभी स्कूल में भी विषयों पर बहस में भागीदारी लिया करते थे। इनाम भी जीते थे, इसलिए मॉस्टरों के भी वह प्रिय शागिर्द बन गए थे।

एक कमरेवाला घर था, जिसमें सभी रहते थे। घर के बाहर ही एक छोटी केबिन में बाबा जरूरत की चीजें रखकर बेचते थे। माँ सुबह उठकर कभी चने, कभी मूँग तो फिर कभी चौली पकाकर उन्हें थाल में भरकर देती, जो दो-तीन

घंटों में ही बिक जाते थे। उन्हीं पैसों से वह घर की जरूरत की चीजें लेकर, खाने का जुगाड़ करती। 'लाओ तो खाओ' वाला हिसाब था, पर बाबा ने कभी दिल को मायूस होने नहीं दिया। वे दुखों को जिंदगी की सुंदरता मानते थे और कहा करते थे कि इंसान कभी एक-सी अवस्था में नहीं रहता। यही जिंदगी जो बिताई उससे वे काफी संतुष्ट थे। यही कारण था कि आगे चलकर ताऊ की अच्छी कमाई के बावजूद वे इस एक कमरेवाले पुराने मकान को छोड़कर नए बड़े घर में जाने को तैयार न थे।

दुख के दिन बीत गए, ताऊ सबसे आगे निकल गए। वकालत के धंधे में धन व शोहरत दोनों कमाए। अपने लिए पढ़ी-लिखी, नौकरी करती हुई लड़की ढूँढ़कर उससे ब्याह कर लिया। अपने बच्चों को अँग्रेजी स्कूल में दाखिला दिलाया। घर की व्यवस्था सब ठीक ही चल रही थी। अपने बड़े घर में एक हिस्सा दादा और छोटे भाई को दिया। बाकी एक भाई पुराने एक कमरे वाले घर में ही रहा। ताऊ ने बाबा से कहा था-'अब यह केबिन बंद करके घर में आराम करो।'

बाबा ने कहा—'बेटा जब तक जिंदा हूँ, तब तक इस केबिन से निभाऊँगा। मेरे मरने के बाद जैसे चाहो वैसे कर लेना! कमाई के लिए धंधा नहीं करता हूँ, बस वक्त कट जाता है। वैसे भी बड़ी उम्र में शरीर से काम लेना ही चाहिए, नहीं तो हड्डियाँ जम जाती हैं।'

ताऊ के मनचाहे विषय थे हिंदी और राजनीति, राजनीति का उन्हें शौक रहा और अच्छा अभ्यास भी करते थे। एक बार आजाद उम्मीदवार के तौर पर चुनाव में खड़े रहे। सरकारी पार्टी की तरफ से बहुत पैसे देकर उनका हाथ ऊपर करवाया, बाद में उसी पार्टी का सदस्य बनकर काम करते रहे। सामाजिक काम, नौकरी लेकर देना, छोटे-मोटे झगड़ों को निपटाने के लिए मशहूरी भी मिली। हालाँकि शुरुवाती दौर में उसके दुश्मन भी बहुत थे। धीरे-धीरे पानी में ठहराव आता गया और उनके हिमायती बढ़ते गए।

बाबा सुबह गुजरे, ताऊ को झंडे की सलामी के लिए जाना ही था, पर उसके बाद एक दुकान का महूरत भी करना था। झंडे की सलामी के लिए असेंबली मेंबर आनेवाला था। सुबह ही उसने शास्त्री जी को अपने पिता के देहांत की खबर दी थी। उसने कहा, सलामी का काम पूरा करके आपके पास आऊँगा। ताऊ को पता चला कि डिप्टी मिनिस्टर भी अपने गाँव आया हुआ है। यहाँ से 25-30 मील के फासले पर ही वह गाँव था। ताऊ ने उसे भी फोन के द्वारा

यह जानकारी दी। डिप्टी मिनिस्टर ने कहा–'मैं भी समय पर पहुँच जाऊँगा, फिर भी कुछ देर हो सकती है!'

'नहीं साहब! ऐसे कैसे होगा! यहाँ तो बड़ा जुलूस निकलेगा, जिसका मार्गदर्शन आपको ही करना है' ताऊ ने जोर देते हुए कहा।

वजीर साहब कुछ कह नहीं पाए। उन्हें पता था कि उस इलाके के वोटों पर ताऊ का बड़ा कब्जा है। आखिर आने का वक्त तय हो गया। ताऊ के चेहरे पर मुस्कान थी, खेल को जीतने जैसी। उसने बाहर आकर हाथ जोड़ते हुए सबको बताया–'नायब मंत्री महोदय खुद आकर इस जुलूस का मार्गदर्शन करेंगे और पूरे दस बजे यहाँ पहुँचेंगे, तब तक और भी लोग झंडे की सलामी से फारिग हो जाएँगे। इसलिए आखरी सफर का वक्त दस बजे रखते हैं।'

लोगों में खुशी की लहर दौड़ गई। जिनकी ताऊ से नहीं बनती थी, उनके चेहरे उतर गए। एक ने कहा–'बाप की मौत पर मंत्री महोदय आ रहे हैं, अरे लगता है पगला गया है।' दूसरे ने कहा–'पागल नहीं है, सब सब वोटों का खेल है।' तीसरे ने अक्लमंदी दिखाते हुए कहा–'भाई! पार्टी का जोर है। आज अगर उसके घर का कुत्ता भी मरता तो नायब मंत्री आते। ये नेता होते ही स्वार्थी हैं। इसलिए तो वे गधे को भी बाप बना लेते हैं।' दो-तीन लोगों ने उन्हें होंठों पर उँगली रखने की हिदायत दी यह कहते हुए कि 'दीवारों के भी कान होते हैं।'

ताऊ का उत्साह बढ़ गया। दो-तीन लोग लगवाकर उन्हें घर के सामने सफाई करने की हिदायत दी। वीडियो-कैसेट निकलवाने का बंदोबस्त किया। फोटोग्राफर तो पहले ही आ चुका था। बताशे और नारियल का ऑर्डर भेज दिया। सब उसके काम में हाथ बँटा रहे थे। अब ताऊ फकत सोफा पर बैठकर फोन कर रहे थे। खादी का कुर्ता-पाजामा पहनकर तैयार हो गए। उनका सारा ध्यान बाहर था कि कब मोटर का हॉर्न बजता है और कब पुलिस का यूनिट आता है। इस बीच में जिला के एस॰पी॰, तालुके के डिप्टी कलैक्टर, शहर के पी॰आई॰ के फोन आ चुके थे। पुलिस की जीप पहुँचते ही इर्द-गिर्द खाकी वर्दी वाले बहुत खबरदारी से यहाँ-वहाँ आँखें फिरा रहे थे। ऐसे मौकों पर उनमें काफी फुर्ती आ जाती है, खास करके आजकल, जब नेताओं के पीछे उनके विरोधी दल के आदमी हाथ धोकर पड़े रहते हैं।

अर्थी की पूरी तैयारी हो चुकी थी। अंदर से औरतों के रोने की आवाज जोर-जोर से आ रही थी। जहाँ-जहाँ कैमरा फिर रहा था, उसी तरफ लोगों के

चेहरे भी फिर रहे थे...कोई अपनी नाक साफ कर रहा, कोई अपने आँसू पोंछने के लिए रूमाल का इस्तेमाल कर रहा, तो कोई अपना सिर पीटे जा रहा था, कुछ तो चीखने-चिल्लाने में व्यस्त थे।

नायब मंत्री और उनके साथ शहर के कुछ मुख्य आदमी आए, तो बैठे हुए लोगों में हलचल मच गई। ताऊ उन्हें ले आने के लिए आँखों पर रूमाल रखकर आगे बढ़े। नायब मंत्री ने अपनी बाहें उसके गले में डालते हुए उसके काँधों को थपथपाना शुरू किया।

लोगों ने मंत्री को घेर लिया। कुछ उसके पाँव छूने लगे, कुछ हाथ बाँधे खड़े रहे, दादा उन्हें हाथ पकड़कर अर्थी की तरफ ले गए। सेक्रेटरी ने मंत्री को लाए हुए फूल दिए, जो उन्होंने अर्थी पर अर्पण करके हाथ जोड़े। कैमरा फिरता रहा।

'मंत्री महोदय की जय, मंत्री महोदय की जय।' अर्थी को कंधा देने के लिए बेइंतिहा भीड़ हो गई थी।

आखिर पहले चार बेटों ने कंधा दिया 'राम नाम सत्य है, वाहगुरु संग है!' आहिस्ते-आहिस्ते कंधे बदलते रहे। अर्थी को एक सजाए गए ट्रक में रखा गया। कितने ही ठेकेदार अपने ट्रक लाए थे, कुछ मोटरें, कुछ स्कूटर लाए थे।

'बाबा जी अमर रहें! मंत्री महोदय की जय, बाबा जी की जय, राम नाम संग है, हरी नाम सत्य है, मंत्री महोदय की जय! बाबा अमर रहे।' बताशे फूल और सिक्के फेंके जाने लगे। ताऊ मंत्री महोदय के साथ उसकी कार में जा बैठे। केमरे का फोकस अब उस तरफ था। आगे पुलिस की जीप थी, उसके पीछे मंत्री की कार और उसके पीछे पुलिस, फिर अर्थी वाली ट्रक और बड़े आदमियों की मोटरें और स्कूटर...। जुलूस काफी बड़ा था। पाँच मिनट के पश्चात् नायब मंत्री की कार रुकी और उसने ताऊ से इजाजत ली। ताऊ ने उनका शुकराना माना और लौटकर अपनी कार में बैठ गए। उसके चेहरे पर संतोष की रेखाएँ जाहिर थीं।

मंत्री की कार के साथ कितनी मोटरों व स्कूटरों ने रुख बदला। इसके बावजूद श्मशान भूमि तक जुलूस में बहुत आदमी थे। अर्थी श्मशान भूमि में पहुँच गई थी। लोगों की बातचीत का सिलसिला जारी था।

'बाबा की आत्मा को यह सब देखकर कितनी शांति मिलती होगी?' दूसरे ने कहा–'बाबा अच्छा इंसान था, कोई घमंड नहीं था।' तीसरे ने कहा–'कल तक भी उन्होंने केबिन में बैठकर गोलियाँ बेचीं।'

किसी ने कहा—'कभी-कभी बच्चों को मुफ्त में चीजें दिया करते थे। भाई जिसने खुद गरीबी में दिन बिताए, उसको ही गरीबों की कद्र होगी।'

एक और ने कहा—'ताऊ के दिमाग में भी अभी कुछ गुरु बैठा है।'

'आहिस्ते बोलो, आहिस्ते बोलो, पहले तो वह भी अपनी गरीबी के गुण गाया करता था। भाई फिर भी और नेताओं से बेहतर है, किसी को लूटता तो नहीं है। गरीबों की पीड़ा तो महसूस करता है। बाकी है गरीबों का खानदान।'

'यह तो अच्छा है कि ताऊ पढ़-लिख गए, अच्छे वकील बने और तरक्की कर ली। और ऊपर से सरकारी पार्टी के नेता! वर्ना क्या मुझ जैसे के पास मंत्री आते? या इतनी भीड़ साथ होती?'

अर्थी से आग के शोले निकलने लगे। लोगों ने धीरे-धीरे पीछे हटते हुए वापस लौटना शुरू कर दिया था। कुछ एक की तो अंदर की आग भी बाहर निकली—'अरे भाई ये तो उनकी चमचागिरी करनी है।'

'पर बाबा की आत्मा भी क्या याद करेगी।' किसी ने व्यंग कसा।

ताऊ जब घर लौटे तो उसके चेहरे पर फख्र वाली जीत थी। इस इलैक्शन में उसे जीतने की संभावना थी, फिर...ऐसे जुलूसों में उसे भी...!

दस्तावेज

नारायण भारती

मंघनमल बैरक के बाहर वरांडे में पड़ी खाट पर बैठा सिंध से लेकर आए दस्तावेजों, रसीदों और बही-खातों की पोटली खोलकर उसमें से एक-एक पुलिंदा निकालकर देखता रहा। हर एक कागज पर सरसरी नजर डालता, रुक-रुक कर होठों में कुछ बड़बड़ाता जाता, कभी ठंडी साँस लेता, कभी अपनी पेशानी पर हाथ ठोकते–'अबो किस्मत! नहीं तो...।' कहकर कुछ दस्तावेज एक तरफ रखता गया, तो कभी उनकी एक अलग गड्डी बनाकर रखता।

दो तीन दिन पहले उसे क्लेम्स ऑफिस से नोटिस मिला था–'दस तारीख की सुबह ग्यारह बजे तुम्हारी हाजिरी दूसरे नंबर कैंप की ऑफिस में तय हुई है। समय पर अपने दस्तावेज, उनकी जेरॉक्स व सभी लिखे कागज सबूत के तौर, गवाहों के साथ हाजिर रहना। गैरमौजूदगी की हालत में एकतरफा फैसला किया जाएगा।'

मंघनमल ने जमीनों का क्लेम भरा था और घरों का भी, लेकिन यह हाजिरी घरों के क्लेम की थी। उन घरों के लिखे हुए सबूतों को ले जाने के लिए वह घरों के दस्तावेज ढूँढ़ रहा था। एक-एक दस्तावेज देखकर, घरवाले कागज जुदा कर रहा था।

एक दस्तावेज पर सरसरी नजर डाली और पढ़ते ही उसके सामने तस्वीर की तरह उस जगह का नक्शा फिरने लगा। उसकी गोशालावाली जगह हिंदुओं की बस्ती में थी। उसके पास ही सुमन हिंदू रहता था। वह मंघनमल के खेत में हल चलाया करता था। खेत के पास ही सूखी घास और भूसा रखने की जगह थी। इस तरह एक जगह, दूसरी जगह, तीसरी जगह...कुछ दस्तावेज दस साल पुराने थे, तो कुछ बीस साल पुराने। कुछ तो तीस, चालीस साल से भी ऊपर के थे। कुछ घर उसकी स्मृति से भी पहले के लिए हुए थे, कुछ का तो निर्माण उसके सामने ही हुआ। द्दिक सूतार उसके घर में बैठकर, दर-दरवाजे, तख्तियाँ

और जरूरत के सामान बनाता, वह उसे भालू कहकर चिढ़ाता था, जो उसे अच्छी तरह से याद था। दस्तावेज देखते ऐसी अनेक कहानियाँ उसके मन में उभर आईं। उसने एक-एक करके कितने दस्तावेज देखे और देखते-देखते उसकी नजरें इन अक्षरों पर जम गईं–'रसूल बख्श बेटा निबी बख्श, रहवासी मीरल गाँव', उसकी निगाहें फिर आगे बढ़ीं और वह पढ़ने लगा–'इकरार करता हूँ और अपनी रजा-खुशी के साथ लिखकर देता हूँ, मैं रसूल बख्श, बेटा निबी बख्श, जात-मंगर्यो, काम-खेती करना, उम्र–30 साल, स्थायी निवास-मीरल गाँव, तालुका-कंबर, जिला-लारकाणो। एक जगह सिकनी, गाँव-मीरल, तालुका-कंबर, जिला-लारकाणा, जिसमें तीन कोठियाँ, एक कमरा और नीम का पेड़ है। उत्तर की तरफ पाठशाला है, जिसमें मुसलमानों के लड़के पढ़ते हैं–33 फुट, हद दक्षिण में घर अली हुस्न गुरमानी का, 33 फुट, हद उतर आम जलधारा 21 फुट, दक्षिण में खैरल की जगह 21 फुट, बाहर का दरवाजा उत्तर की तरफ और कोठियों के टेरेस से पानी के निकाले जाने का रस्ता आम जलधारा में। ऊपर जिक्र की गई जगह के सभी हक और वास्ते दो सौ रुपए में, सेठ मंघनमल, वालिद सेठ कौड़ोमल, जात हिंदू लोहाणो, उम्र 35 साल, काम-दुकानदारी, रहनेवाला मीरल का, उसे बेच दिया है।'

मंघनमल आगे ज्यादा पढ़ नहीं पाया। उसका हृदय भर आया। उसकी आँखों के आगे रसूल बख्श की जगह, उसकी पत्नी और छोटे पुत्र का चित्र खिंचता चला गया, जिसको रसूल बख्श कभी-कभी खेत पर ले जाया करता था। उसकी दुकान के सामने पहुँचते से गुजरते ही वह अपनी तोतली जुबान में कहता–'भवतार, मुझे अपना चरवाहा न बनाओगे? मैं तुम्हारी गाय-भैंस चरवाऊँगा' और जबान से हुंकार करते हुए खयाली बैल को आगे बढ़ाता, फिर खुद भी दौड़ता हुआ चला जाता। खेत से अनाज के ढेर उठवाते वक्त मंघनमल भी धान का कुछ हिस्सा निकालकर रसूल बख्श को देकर कहते–'ये अपने रमजान का है।'

इन बातों की याद ताजा होते ही उसके होंठों पर मुस्कान आ गई। पाकिस्तान होने से तेरह-चौदह महीने पहले, एक दिन सुबह के पहले पहर रसूल बख्श उसके पास आया और कहने लगा–'भवतार, बीज चाहिए, नहीं तो खेत सूख जाएगी और मुझ मिस्कीन की नैया डूब जाएगी। मेहरबानी करके बीज के दाने दे दो।'

मंघनमल ने शोखी से कहा–'मियाँ दौ सौ रुपए के करीब पहले से ही

तुझ पर बाकी हैं। अभी तक वही नहीं लौटाए हैं। अब और के लिए आए हो। मेरे पास कोई खैरात तो नहीं बँट रही है। मुझसे कुछ न पाओगे, जाकर किसी और से मिलो।'

ऐसा कहकर मंघनमल चप्पल में पाँव रखकर चलने लगा तो रसूल बख्श दरवाजे की चौखट से उठा, सर का पटका उतारकर उसके पैरों में रखते कहा–'भवतार, इस बार यह करम करो, फिर जैसा कहोगे वैसा करूँगा। मेरे पास सामान नहीं है, जो जाकर गिरवी रखूँ। औरत के गले में भी जो शादी वाली साँकली थी, वह उस दिन जसू व्यापारी के पास रख आया हूँ। कपड़ा चाहिए था, नंगे तो नहीं रह सकते? रोटी-कपड़े के सिवा कहाँ बसर होता है!'

'अच्छा मियाँ, अच्छा अब आए हो तो लौटाऊँगा नहीं। पर पिता के समय से खेती-बाड़ी कर रहे हो, हमारे पास न आओगे, तो कहाँ जाओगे? तुम्हारा-हमारा तो स्नेह का रिश्ता, पर वक्त यक-सा नहीं होता। आनेवाली पीढ़ी का क्या भरोसा, फिर क्यों बैठकर कोर्ट के दरवाजे देखें। इसलिए पच्चास रुपए अभी लो और डेढ़ सौ पहले वाले, वो हुए दो सौ। दो सौ में अपने घर की जगह लिखकर दे दो!'

ऐसा कहकर मंघनमल ने चुपी साध ली। रसूल बख्श भी सोच में पड़ गया।

'भवतार, ले दे के यही जगह बची है, वो भी...।' मंघनमल ने उसे बीच में ही टोकते हुए कहा–'मियाँ, वह तुमसे कौन छीन रहा है। तुम जैसे उसमें बैठे हो, वैसे ही बैठे रहो। जब खुदा तुम्हें दाने दे तो फिर से लिखा-पढ़ी करके जगह के मालिक बन जाना। अभी तो जगह तुम्हारे ही हवाले है, बैठे रहो। मेरा तुमसे जुबानी जगह लौटाने का वादा है। वैसे तो मैं यह भी न लूँ, पर अपनों के बीच रहना है? फिर यही व्यापारी कहेंगे कि देखा साई मंघन रसूली के...तुम खुद समझदार हो और जमाने में उठते-बैठते हो!'

बस यूँ ही जगह का दस्तावेज लिखा गया। मंघनमल दस्तावेज देखकर इन सब बातों को याद कर रहा था। सोचने लगा–अब रसूल कहाँ होगा? भला वह भी मुझे याद करता होगा या नहीं?

एक बात का उसे बहुत अफसोस था वह यह कि अगर वह क्लेम ऑफिस में यह दस्तावेज दिखाता है, और वापसी में उसे उस जगह के पैसे मिलते हैं तो फिर जरूर पाकिस्तानी सरकार रसूल से जगह छीनकर, नीलाम करके पैसे वसूल करेगी। और अगर ऐसा हुआ तब रसूल कहाँ रहेगा? मंघनमल अपने मन में सोच रहा था, कि रसूल ने कितनी मेहनत की और आखिर तक

उसका साथ निभाया। अंत तक भी जब दूसरे मुसलमानों की नीयत में बदलाव आया, वह तब भी अपनी ईमानदारी पर कायम रहा। गाँव का मुखिया चिढ़ गया, इस कदर कि सबसे कह दिया कि व्यापारियों को कोई भी चीज लेकर जाने न देना, उनपर मोमनों का हक है। इसके बावजूद रसूल रातों रात सामान उठवाकर उसे लारकाणा पहुँचा आया। इतना ही नहीं, हैदराबाद तक भी वह साथ आया, गाड़ी पर बिठाकर फिर लौटा था...बिचारे ने किराया तक नहीं लिया। कितना न मैंने जोर भरा पर वह कहता रहा–'ना साईं, ना, सारी उम्र तो आपका दिया खाया, ये तो हमारा फर्ज है, कुरान भी तो यही शिक्षा देता है कि पास-पड़ोसवालों से भाईचारा निभाओ।'

और मैं उससे उसकी जगह छीन लूँ? इस विचार मात्र से दिल को सदमा पहुँचा। रसूल बख्श की याद आते ही साथ में सिंध की याद आँखों में नमी भर गई। आँसू कतरा-कतरा बहते हुए सामने रखे दस्तावेज पर गिरकर सियाही से लिखे उन अक्षरों को धुँधला बनाते रहे।

गोश्त का टुकड़ा

जगदीश

छः बजते ही कारखाने का दरवाजा खुला, मजदूर सैकड़ों की संख्या में कारखाने से निकलने लगे—लंबे, ठिगने, काले, गोरे, बूढ़े-जवान सब तरह के मजदूर थे। हर एक आदमी दूसरे से बिलकुल अलग, लेकिन उनमें एक समानता थी, सबकी आँखें नींद से झपकती हुईं, थकी हुईं। वे जल्दी-जल्दी मुख्य दरवाजे से उसी तरह निकल रहे थे, जिस तरह कैदी छुट्टी मिलने पर हवाखोरी के लिए जा रहे हों, या खेत-खलिहानों से सुबह के वक्त उन भेड़-बकरियों का समूह जा रहा हो, जो जमींदार के खेत में घूमने के जुर्म में कैद कर दी गई थीं। शंकर ने नीले आसमान पर नजर डाली।

आसमान पर बादलों के छोटे-छोटे टुकड़े थे—सफेद, स्याह, नीले, एक दूसरे में घुले-मिले होते हुए, मासूम बच्चे की तरह मुस्कराते हुए। सफेद बादल के एक टुकड़े ने शंकर के खयालात में उत्पात पैदा कर दिया। दरिया का पानी जो समंदर में गिरकर शांत हो चुका था, एक कंकर के गिरने से जोर-जोर से हरकत करने लगा। सतह का पानी जैसे रेला बनकर विस्तार पाता रहा और धीरे-धीरे छोटी पगडंडियों से अपना रास्ता बना रहा था, पर इन सभी रेलों में एक सूरत का अक्स था और वह था शंकर की बीवी का अक्स।

शंकर के शरीर में एक झुरझुरी-सी लहराई। उसे एक शीतल तरंग-सी जैसे छू गई। उसे अपने बदन पर पड़ा हुआ खद्दर का कुर्ता भी उस ठंड के बचाव के लिए कम लगा। उसकी टाँगों की मजबूती जैसे ढीली पड़ गई। वह एक अनजान डर से थरथरा उठा। उसकी बीवी का चेहरा उसकी आँखों के सामने घूमने लगा। अनजाने में शंकर ने उसके बारे में क्या-क्या सोचा—'वह जाने किन-किन तकलीफों से गुजर रही होगी? क्या वह उसे देख सकेगा?' वह चाहता था कि किसी तरह उड़कर अपनी बीवी के पास पहुँच जाए और उसे वे तमाम बातें सुनाए, जो इस काम के दौरान वह अपने सीने में जमा करता रहा था। उसे अपने

सीने पर एक बोझ-सा मालूम हुआ और यह यकीन भी था कि अपनी बीवी से उसे हमदर्दी मिलेगी। आज वह जैसे हमदर्दी का मोहताज था। वह तेज-तेज चलने लगा।

शंकर हसू बिहार के एक छोटे से कस्बे सुलेमानपुर के एक जुलाहे अभयराम का लड़का था। उसका बाप किसी हद तक पढ़ा-लिखा होने के कारण एक जाना-माना जुलाहा था। गाँव के बाकी जुलाहे उसके माध्यम से शहर से सूत खरीद लेते और बुना हुआ कपड़ा बेचा करते। सन् 1930 में सिविल नाकाबंदी के दिनों में जब अँग्रेजी माल का बाइकॉट किया गया और गैर मुल्कों का कपड़ा होलियों की सूरत में जला तो शंकर के पिता का कारोबार खूब चमक उठा। अभयराम ने उन्हीं दिनों में फैसला किया कि वह शंकर को अच्छी और ऊँची शिक्षा दिलवाएगा और विख्यात ओहदे पर तैनात कराएगा। हालाँकि शंकर को स्कूल में बिठा दिया गया, पर पिता की बेवक्त मौत के बाद रिश्तेदारों के रूखे और ठंडे व्यवहार ने शंकर और उसके परिवार को मंजिल के उस कगार पर लाकर खड़ा किया, जहाँ इंसान खुद को तन्हा और लाचार महसूस करता हो। वह गर्दिश के उस दौर में, अपनी जिंदगी के मालिक-अपने खुदा से भी जैसे ऊब गया। उसे यूँ महसूस होता कि उसके मुल्क के पूँजीपति अपनी सियासत को एक ऐसे शिकंजे में जकड़े हुए हैं, जिससे रिहाई पाना नामुमकिन है। अपनी इस हुकूमत से मुश्किलों का हल पाना प्रजा के लिए एक घुटन का दायरा बन गया और हुकूमत प्रजा की कमजोरियों को उनके हाथों को हासिल करने की जद्दोजहद को उनकी मुश्किलों की वजह बताती रही। जहाँ प्रजा हुकूमत से, उनकी रियायतों से प्रताड़ित रहती थी, हुकूमत पर उसका कोई असर नहीं होता। हुकूमत को कोई खौफ भी नहीं छू पाता, शायद इसलिए कि वह हुकूमत करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझती है।

अपने माहौल से तंग इंसान के दिल में अपनी हुकूमत के खिलाफ एक विद्रोही भावना पनपती है। वहीं उसके दिल में कुछ करने का अहसास दृढ़ हो जाता है, लेकिन अपने अनचाहे पेशे पर नजर डालकर उसे गुमान होता है कि वह एक अकेला चना पहाड़ का क्या बिगाड़ लेगा और उसकी बेबसी की हालत में वह हर उस ताकत से मिल जाता है, जो हुकूमत के खिलाफ है।

इन हालात में शंकर का पढ़ाई कायम रखना नामुमकिन सा हो गया। उसे आठवीं कक्षा से ही अपनी पढ़ाई छोड़नी पड़ी। उस वक्त पढ़ा-लिखा शंकर अनपढ़ शंकर से भी बदतर हालत में था। अब पढ़ाई के बंद होने के कारण उसे

अपना पैतृक पेशा अख्तयार करने में कोई दिक्कत महसूस न होती। लेकिन आठ साल की शिक्षा ने उसे उस पेशे को महत्त्वहीन समझना सिखा दिया था। पढ़ाई के दौरान वह अपने भविष्य के हसीन और शानदार ख्वाब देखता रहा था। लेकिन वक्त ने उसे ख्वाब से झंझोड़ा और वह अपनी किस्मत आजमाने पर डट गया।

भागलपुर सुलेमानपुर से तीस मील दूर था। शंकर ने भागलपुर के किसी मिल में नौकरी करने का इरादा किया। तनख्वाह के तौर पर उसे हर माह एक निर्धारित की हुई रकम के मिलने का विचार उसे मिल की तरफ खींच रहा था। लेकिन बीवी की मुहब्बत उसे शहर से परे धकेल रही थी। अब तक वह अपनी बीवी से बिल्कुल भी जुदा न हुआ था। इसलिए जुदाई का ख्याल उसे हतोत्साहित करता। एक लंबी दिमागी कशमकश के बाद शंकर ने फैसला कर लिया। भूख मुहब्बत पर हावी हो गई।

मुस्कराते हुए बादल को देखकर उसे अपनी बीवी याद हो आई—अल्हड़, जवान। अपनी रवानगी का मंजर याद करके उसकी आँखों में आँसू छलक आए। उसकी माँ ने उसे कितने प्यार से तिलक लगाया था। उसकी बीवी किवाड़ की ओट में खड़ी उसकी तरफ हसरत भरी निगाहों से देखती रह गई थी, जैसे वह किसी दूर देश में जा रहा हो, जहाँ से वापस आना मुश्किल नहीं, नामुमकिन था। चलते वक्त उसकी माँ ने उसे पिता तुल्य अंदाज से चूमा था और रोकर अपनी बेबसी का वास्ता दिया था। शंकर ने भी हर रोज खत लिखने का वादा किया था और अपनी माँ से बार-बार कहा था कि खत चंदेश्वरी चाचा से पढ़वा लिया करे। लेकिन आज शंकर को घर से विदा हुए सात रोज गुजर गए थे। इस दौरान वह कोई खत न लिख सका था। वह खुद को मुजरिम महसूस कर रहा था। लेकिन फिर उसका दिल सफाई पेश करने लगा—उसे इतनी फुरसत ही कहाँ मिली थी कि वह खत लिख सके! छः रोज तो सुबह से शाम तक वह अलग-अलग कारखानों में घूमता रहा था कि उसे कोई काम मिल जाए। पूँजीपतियों के सामने रोता रहा, गिड़गिड़ाता रहा, उसने अपनी गरीबी का वास्ता दिया, अपनी बूढ़ी माँ का हाल बताया, लेकिन सब बेकार। कल ही एक पूँजीपति ने न जाने क्यों उसको एक नौकरी दी-तीस रुपए माहवार, जिससे उसने तीन जिंदगानियों का पेट पालना था—खुद, माँ, बीवी, तीनों का।

आज शंकर ने फैसला कर लिया कि वह अपनी बीवी को खत जरूर लिखेगा।

सराय में पहुँचकर वह इतना थका-माँदा था कि दम लेने के लिए वह

दहलीज में पड़ी हुई चटाई पर बैठ गया....उसने सुना था कि नहाने से पहले पसीना सुखा लेना चाहिए। लेकिन अभी बैठा ही था कि जम्हाई आई और तबीयत लेटने के लिए मचल गई। वह चटाई पर लेट गया। उसने अकड़े हुए अंगों को ढीला छोड़ दिया और कुछ सुकून महसूस किया। उसे ऐसे लगा जैसे उसकी थकान आहिस्ता-आहिस्ता चटाई पर गिर रही है। उस पर एक उनींदापन छाने लगा। ऐसे में उसकी आँख लग गई...उसकी आँख उस वक्त खुली, जब शाम को सराय का चौकीदार मालिक के आदेश पर सफाई कराने में जुट गया। भंगिन की लड़की को सामने खड़ा देखकर न जाने क्यों उसे फिर अपनी बीवी याद आ गई। उसने चौकीदार से समय पूछा, लेकिन चौकीदार भी लापरवाही से कुछ इस तरह खामोश रहा जैसे वह खुद पूँजीपति हो।

ढलती हुई शाम रात के आने का पता दे रही थी। शंकर जल्दी से उठा और बाहर ढाबे पर खाना खाकर मिल की तरफ हो लिया।

पाँच रोज और यूँ ही गुजर गए। जब शंकर सुबह को कारखाने से लौटता, उसे अपनी आँखें नींद के मारे बोझल सूजी हुई महसूस होतीं। तमाम रात खड़ा रहने के कारण उसकी टाँगें सुन्न हो जातीं। उसे गुमान होता कि वह उसके बदन का हिस्सा नहीं हैं। चलते वक्त उसे महसूस होता जैसे उसके बदन को चीरा जा रहा है। उसकी रग-रग दर्द करती, जोड़-जोड़ टूटकर गिर जाना चाहता, हर रोज वह यही फैसला करता कि अगली शाम वह फिर कारखाने नहीं जाएगा, लेकिन शाम से पहले ही बेकारी का ख्याल भूत बनकर उसके सामने आ खड़ा होता और वह फिर कारखाने चला जाता।

इन दिनों में उसे अपनी माँ, बीवी और घर का खयाल एक बार भी नहीं आया। आता भी कैसे? वह कारखाने से लौटता और बिना नहाये या खाना खाए सो रहता। शाम को उठता, नहाकर खाना खाता और कारखाने चला जाता। कारखाने के सिवा उसे किसी चीज के बारे में सोचने की फुरसत ही न थी। कारखाने के बड़े-बड़े पहिये हमेशा उसके दिमाग पर छाए रहते, बड़े-बड़े बुलंद पहिये, जो लगातार घूमते रहते थे, बेजान बिना सोचे-समझे और उसी तरह थे कारखाने में काम करने वाले। हर शख्स का काम स्पष्ट रूप से तय हुआ करता। उसके लिए सोचने की कोई गुंजाइश न थी। अपने बारे में सोचने पर उसका हक न था। उसका काम सिर्फ कील दबाना, धागा पिरोना, धागों के रंग बदलना था। उसी सिलसिले में शंकर कई बार सोचता-'ये काम कितने आसान हैं कोई मुश्किल नहीं, ताकत का खर्च नहीं, दिमाग पर जोर नहीं, लेकिन इसके बावजूद

इतनी थकान क्यों?'

शनिवार का दिन था, शाम का वक्त। शंकर आहिस्ता-आहिस्ता कारखाने की तरफ जा रहा था, बिल्कुल इस तरह जिस तरह एक मरीज आप्रेशन टेबल की तरफ जा रहा हो। इत्तिफाक से उसे अपना पुराना दोस्त बिहारी दिखाई दिया। बिहारी और शंकर एक ही गाँव के रहनेवाले थे और एक-दूसरे को बचपन से जानते थे। लेकिन शंकर के पिता के देहांत के कुछ माह पहले बिहारी के पिता अपने परिवार सहित किसी दूसरे गाँव में जाकर बस गए थे। उसके बाद बिहारी के साथ कौन-कौन से हादसे पेश आए, इनका शंकर को कोई ज्ञान न था। शंकर सिर्फ इतना महसूस कर सकता था कि बिहारी को बहुत सी मुश्किलों का सामना करना पड़ा है। वह पहले से कहीं दुबला हो गया था और अब उसका चेहरा रोटी की तरह सपाट और सफेद था।

बिहारी शंकर को देखकर फूट-फूटकर रोने लगा। शंकर को हैरानी हुई। उसे कभी यकीन न था कि बिहारी उसे मिलकर मुहब्बत के मारे यूँ रोने लगेगा। शंकर बिहारी की तरफ देखने लगा...पर बिहारी के आँसू थम न पाए। अब शंकर की हैरानी बढ़ गई। उसके दिल में बिहारी के लिए हमदर्दी का जज्बा जोश भरने लगा। शंकर ने बिहारी से रोने का कारण पूछा, लेकिन वह दहाड़ें मार-मारकर रोने लगा।

बापू का खत आया है, वह मर गई!

हैं...वह मर गई। शंकर ने बिहारी के चेहरे की तरफ तकते हुए दोहराया। शंकर पर जैसे वज्र गिरा और वह कितनी ही देर बिहारी की तरफ उसी तरह देखता रहा। उसकी आँखों के सामने अपना घर घूम रहा था। उसे ऐसा महसूस हुआ जैसे उसकी माँ दहलीज पर बैठी हुई शोक मना रही है। गाँव की औरतें सब उसे दिलासा दे रही हैं, और कह रही हैं–

चंदा तेरा बेटा जीता रहे, बहुएँ और बहुत...

ये शब्द शंकर के कानों में जोर-जोर से गूँज रहे थे जैसे कोई उसके कानों में पिघला हुआ शीशा उँडेल रहा हो।

बिहारी कह रहा था–बापू ने लिखा है, गर्भावस्था में कोई गड़बड़ी हो गई, और वह मर गई। गर्भ का नाम सुनकर शंकर पर क्या गुजरी, यह शंकर ही जानता था। आज से बारह रोज पहले शंकर ने भी अपनी बीवी को दर्द की हालत में छोड़ा था। हकीकत में वह कुछ समय तक अपना भागलपुर आना भी उसी वजह से स्थगित करता रहा था। लेकिन बढ़ती हुई महँगाई ने उसे मजबूर कर दिया था

कि वह अपनी बीवी को उस हालत में छोड़कर चला आए।

बिहारी की बीवी की मौत की खबर ने उसे चेतावनी दी। वह एक परिंदे की तरह फड़फड़ाया, जो आजाद होने के लिए संघर्ष कर रहा हो, लेकिन नौकरी में हसीन कैदखाने ने कुछ समय के लिए संघर्ष के जाल में फाँस रखा था। उस ने इरादा किया कि वह अगले रोज सुलेमानपुर जाएगा।

पहली बार शंकर तेरह दिन के बाद सुलेमानपुर वापस आया। वहाँ पहुँचकर शंकर ने देखा कि वह आज एक हसीन बच्चे का बाप था।

इतवार की शाम को शंकर फिर हर रोज खत लिखने और हर इतवार सुलेमानपुर आने का वादा करके वापस भागलपुर लौट आया।

खत लिखने का वादा तो वह कमी पूरा कर न सका, लेकिन शंकर हर इतवार को सुलेमानपुर जाता और सोमवार की सुबह लौट आता। छः दिन के लिए फिर घर से बेखबर हो जाता। उसकी यह चर्या कुछ ऐसी हो गई कि वह खुद को मारकर जैसे पूरी कर रहा था। सोमवार को घर से लौटते उसे कोई दर्द महसूस न होता। छः रोज काम करते हुए उसे कभी इतवार का ख्याल न आता और इतवार को घर जाते हुए उसे कोई खुशी न होती। इतवार को सुलेमानपुर जाना जैसे उसके टाइम-टेबल में शामिल हो गया था।

इधर बढ़ती हुई महँगाई चैन ही नहीं लेने देती थी। भागलपुर जैसे शहर में एक वक्त का खाना खाकर भी पंद्रह रुपए माहवार से कम में गुजारा करना नामुमकिन था और बाकी पंद्रह रुपये में तीन-तीन जानों का गुजारा होना मुश्किल सा था। हर महीने शंकर की माँ गाँव के साहूकार से पाँच सात रुपये कर्ज लेती। उसे इस बात की खबर ही न थी कि यह कर्ज कब अदा हो सकेगा, और हो भी सकेगा या नहीं।

अभी उसके पिता के देहांत को एक साल ही गुजरा था कि शंकर पचास रुपये का कर्जदार हो गया-पचास रुपए जो वह और उसका परिवार एक महीना लगातार दो वक्त फाके करके भी अदा नहीं कर सकते थे।

दरिद्रता से तंग आकर शंकर एक दिन अपने मिस्तरी के पास पहुँचा और तनख्वाह बढ़ाने की दरख्वास्त की। मिस्तरी भी जैसे मशीन का एक पुर्जा था, जिसका इंजन पूँजीपति था। उससे किसी तरह के रहम की उम्मीद बेकार थी। दरअसल वह कर भी क्या सकता था? तनख्वाह बढ़ाना उसके हाथ में न था। तनख्वाह काटने का हक मिस्तरी को सौंप रखा था और तनख्वाह बढ़ाना सिर्फ पूँजीपति का हक था। मिस्तरी ने गुरबत का फकत एक ही इलाज बताया कि

वह इतवार को भी ओवर टाइम करने लग जाय...इस तरह आठ या दस रुपए माहवार कमाए जा सकते हैं...मिस्तरी ने कहा।

शंकर यह सुनकर खामोश रहा। एक बार वही दुश्वारी सामने थी, लेकिन इस बार मुहब्बत का मुकाबला मुफलिसी से था, भूख से नहीं, लेकिन मुहब्बत के चेहरे का रंग भी उतर चुका था। शंकर मुहब्बत और मुफलिसी के बीच का फासला पाटने के प्रयास में जुटा रहा।

अब वह महीने में तीस दिन कारखाने जाता। सुबह की नींद से छलकती हुई आँखें लिए हुए सराय को लौटता। शाम तक सोता रहता और उठते ही फिर कारखाने चला जाता। उसकी रूह पर रंग की परतें चढ़ती रहीं, पर उनमें फीकापन था, वह निर्जीव हो चुका था, उसे अपने घर से कोई वास्ता न था। उसका फर्ज महीने आखिर में पच्चीस रुपए मनीऑर्डर कटाकर भेजना था और बस। अब माँ की ममता, बीवी के आँसू और बच्चे का प्यार उसके दिल की हरकत को तेज नहीं कर सकते थे। अब वह कटे हुए जानवर के गोश्त के एक टुकड़े की तरह था, जिस पर स्पर्श का कोई असर नहीं होता।

कमली

देवी नागरानी

'अरी ओ कमली, मेरा हुक्का तो भर दे। दो चार कश लगा लूँ, तो धाँय धाँय करता यह दिमाग कुछ शांत हो।'—नानी ने हिदायती सुर में कुछ इस तरह आवाज दी कि उनका संदेश आँगन से होता हुआ रसोईघर में उसके कानों तक आ पहुँचा।

'अम्मी बस अभी आई कि आई।', वहीं से आवाज देते हुए कमली ने कहा।

'अरी मुर्दार, तू मेरे काम के लिए कभी भी फारिग नहीं होती। टालती रहती है, नखरे भी तो कोई कम नहीं है तेरे। आए दिन बढ़ते ही जा रहे हैं। अब तू कमली से फिर कमसिन जो हो गई है।' नानी ने नाराजगी जाहिर करते हुए कहा।

'नानी, बस दो-चार बर्तन और हैं, माँजकर आती हूँ।' कमली की आवाज रसोईघर भीतर से बाहर नानी के कानों तक आई।

'तेरी आवाज तो बाहर आ सकती है, पर तू नहीं आती। बर्तन करने का दावा करती है। खाना खाएगी तो बर्तन भी करेगी। कहकर क्यों सुनाती है? क्या खाना सुनाकर खाती है? जाने क्या हुआ है आजकल के जमाने को। बच्चे तो बच्चे, नौकरों की भी जबान चलने लगी है।'

'देवकी, ओ देवकी तू ही आकर हुक्का बनादे, इसे तो फुर्सत ही नहीं मिलती मेरे काम के लिए। जरा देखना तो, रसोई में कोयले तो नहीं बुझ गए।'

'आई नानी!' मैं अपनी किताब बिस्तर पर ही छोड़कर बाहर आ गई। तुरंत न आने का नतीजा जानती थी।

'तू भी बहरी हो गई है। मैं तो हिंदुस्तान में आकर ज्यादा परेशान हो गई हूँ।'

'हो गई होंगी, जरूर हुई होंगी। सिंध में चार-चार नौकर-चाकर जो तुम्हारे

आगे-पीछे घूमा करते थे। यहाँ तो बिचारी यह अकेली ही यह कमली है, किस काम को देखे, जिसको अंजाम दे, किस काम को छोड़े!' सोचा, पर कह न पाई। शामत को दावत देना भला किसे अच्छा लगता है?'

मेरी सोच मेरी हमराज बन गई, सोची हुई बात मुँह में ही रह गई। नानी की आवाज रोबदार तो थी ही, पर नाराजगी में उसमें से कुछ और ही स्वर निकलते थे। कुछ और सुनूँ इससे पहले हुक्का उठाकर हौदी की ओर चल पड़ी। पुराना पानी गिराया, ताजा पानी भरा, टोपी को उँडेलकर राख निकाली, फिर अंगार डालने के लिए रसोईघर में गई।

कमली ने आँखें उठाकर मेरी ओर देखा—लगाघ वह बहुत ही निर्बल हो गई थी...शायद काम का बोझ उससे उठाया नहीं जा रहा था, और ऊपर से इन वजनदार शब्दों की बौछार! कमली मेरी हमउम्र थी, नानी की नातिन मैं भी थी, और वह भी। पर फर्क था। मैं सेज पर सोती, वह मेहनतकशी की चक्की में पिसती रहती। मैं पढ़ाई के लिए स्कूल जाती, वह रसोईघर का काम सँभालती।

अपनी पीठ पर मेरे हाथ का स्पर्श महसूस करके उसकी आँखें गीली हो गईं। लगा, पुराने जख्मों से कुछ रिस रहा हो। पर वह चुप रही। खामोशी भी कितनी अजीब होती है। अपनी ही भाषा में कितनी दास्तानें एक ही बार मैं बोल जाती हैं। हाँ यह और बात है, कि कोई समझे, कोई ना समझे, कोई महसूस करे, कोई ना करे।

'कमली तुम बर्तन माँजकर रखती जाओ, मैं धोती जाती हूँ। इस तरह काम जल्दी खत्म होगा। फिर तुम जाकर थोड़ा आराम कर लेना।' मैंने नरमी बरतते हुए कहा।

'नहीं बीबी, मैं कर लूँगी। आप नानी का हुक्का भर दीजिए...' और उसकी नाक की सूँ...सूँ...ने बहुत कुछ बहने से रोक लिया!' इतना तो मेरे बाल-मन ने जान लिया था।

मैंने हुक्का लाकर नानी की खाट पर रख दिया और अपने कमरे की ओर जाने के लिए कदम बढ़ाया ही था कि सामने नानू जान आँगन में आते हुए दिखाई दिए।

'सलाम नानू जान...!' मैंने भागकर अपनी बाहें उनके इर्द-गिर्द लपेटते हुए कहा।

'सलाम बेटा, खुश रहो! कहो पढ़ाई ठीक-ठाक चल रही है ना?' नानू ने मेरे सर पर हाथ फेरते हुए पूछा।

'हाँ नानू, बिलकुल ठीक चल रही है।' कहकर मैं चलने लगी, पर मेरे पाँव रुक गए।

'लड़कियों को पढ़ाना बेकार है। दिमाग खराब हो जाता है उनका।' नानी ने हुक्के की गुड़-गुड़ करते हुए एक बड़ा कश लेते हुए अपनी बिन माँगी राय सामने रखी।

'क्यों न पढ़ें? जमाना भी तो बदला है कि नहीं? मैं तो कहता हूँ कि कमली को भी इसके स्कूल में दाखिल करवा दो। दोनों का साथ भी हो जाएगा और पढ़ाई भी।'

'अब चुप भी करो, ज्यादा दिमाग खराब मत करो उसका। वह भी पढ़ेगी तो घर का काम कौन सँभालेगा? मैं तो बोलकर फँस गई।' और नानी की बड़बड़ाहट रेंगती हुई मेरे कानों तक पहुँची, जिसमें कुछ कड़वे, कुछ कसैले शब्द थे, जो पिघले डामर की तरह मेरे कानों में तैरते रहे।

'अब बात को आगे मत बढ़ाओ!' नानू ने अपने कमरे की ओर रुख करते हुए कहा।

'कमतर जात के लोग हैं। कितना भी भला करो, भुला देते हैं। जमाना ही बदल गया है। न वे लोग रहे हैं, न ही वह खुशबू बाकी रही है किसी में।'

'अरी भाग्यवान अब घड़ी पल चुप भी हो जाओ। बिचारी दोनों लड़कियाँ क्या कुछ नहीं करतीं? तुम्हारी हर फरमाइश तो पूरी करती हैं, पल दो पल देरी तो हो ही जाती है। तुमने तो उम्र काटी है, इनके सामने तो पूरी ज़िंदगी पड़ी है। मुझे तुम्हारी ये बातें बिल्कुल नहीं भातीं, और न ही तुम्हें ऐसा करना शोभा देता है।

'नहीं अच्छी लगती तो!....

अभी नानी की बात पूरी भी नहीं हुई थी कि नानू ने रोबदार आवाज में कहा–'अपने ही घर में आदमी कुछ पल सुकून के बैठे, ऐसा तो मौसम ही नहीं रहा। काम से लौटकर घर आओ तो घर घर लगना चाहिए। यहाँ तो हरदम तुम्हारी शिकायतों की दुकान खुली रहती है!'

'हाँ हाँ, अब यह मेरी दुकान हो गई, और वह तुम्हारी...! यही कहना चाहते हो न?'

'अब बस भी करो। मैं जाकर लेट रहा हूँ!' कहकर नाना उठने लगे।

'खाना तो खालो। क्या यूँ ही भूखे पेट लेट जाओगे? कमली, अरी ओ कमली अपने नानू को खाना तो देना, जल्दी हाथ पाँव चला।' नानी की बुलंद

आवाज सुनने में आई।

'जी आई नानी, अभी आई। तवे से रोटी उतारकर लाती हूँ।'

मैं इतनी बड़ी तो न थी, पर न जाने क्यों नानी की तंज-भरी आवाज में कही बातें मेरे भीतर तीर सामान चुभ जातीं। अमीरी गरीबी की दीवार नाजुक नहीं, ईंटों से भी ज्यादा मजबूत होती है। लाराकाणे में जमीनदारी थी, बड़ी हवेली थी, बग्गी थी, चार-चार दासियाँ दिन-रात उनके आगे पीछे फिरा करतीं। एक दासी दिन-भर घर की सफाई करती, बिस्तर बिछाती, कपड़े धोती, उन्हें सुखाकर इस्त्री करके रख देती। दूसरी चाय-पानी-नाश्ता, दो समय के खाने की पूरी व्यवस्था करती। तीसरी घर की जरूरतों की हर चीज बाजार से ले आती और समूचे घर की हर कम ज्यादा चीज का बंदोबस्त करती। और चौथी यह 'कमली' जो दस साल की उम्र से नानी की सेवा में लगी हुई है—नानी की हर आवाज पर हाजिर हो जाती, फिर चाहे किसी भी समय, किसी भी चीज की माँग हो।

'अरे मेरी चप्पल तो ले आना, देख मैंने कंघी कहाँ रख दी? अरे चश्मा जरा साफ कर दे, एक कप चाय बनाकर पिला..!' इस तरह के छोटे-मोटे काम कमली की जिम्मेवारी थी। लगभग मेरी उम्र की, पर सिंध में भी मैं स्कूल जाती और वह नानी की चाकरी में व्यस्त रहती। सबसे बड़ा काम था नानी का हुक्का, जो दिन में दो-तीन बार भरकर नानी के सामने रखना पड़ता। यह लत घर में नानी के सिवाय किसी को भी न थी। नानू बीड़ी पीते थे, और मेरे पिताजी शराब! बाकी सब साफ-सुथरी ज़िंदगी व्यतीत करने में प्रयासरत रहते।

आखिर मौसम बदला। बहारों में खिजाँ आने के आसार बढ़ने लगे। हलचल बढ़ी, दंगे हुए, मारपीट हुई, जुल्म अत्याचार की तपिश नानू को लपेट ले, इससे पहले नानू अपनी इज्जत बचाने के लिए समस्त परिवार को किसी मुसलमान दोस्त की मदद से पोरबंदर की ओर रवाना करने में जुट गए। हिंदुस्तान में भी उनके रहने खाने-पीने का इंतजाम कर दिया। नानू-नानी आए, और साथ मेरे पिता, मैं और कमली भी साथ थीं। मेरी माँ के लिए नानी कहती हैं' तेरी वजह से तेरी माँ को अपनी ज़िंदगी से हाथ धोना पड़ा। न तुम पैदा होती, न वो मरती। 'हाय हाय मेरी मूमल रानी' कहकर छाती पीटते हुए वह अपने बेटी का आए दिन मातम मनातीं।

कमसिन को अपने साथ सिंध से स्थानांतरण के समय नानी ने उसकी पहचान देते कहा था—'यह मेरी नातिन है कमली। दो साल की भी न हुई, माँ मर गई। अब मैं ही इसकी माँ भी हूँ और नानी भी।' कहते हुए दुपट्टे से आँखें

पोंछते नानी कमली का हाथ पकड़ते हुए, लाठी की ठक-ठक के साथ, गाड़ी के इंतजार में खड़ी भीड़ के बीचो-बीच लापरवाही से अपना रास्ता बना लेती। यह हुनर कोई नानी से सीखे। पराए को अपना करना, और अपने को पराया करना।

मैं सोचती रही, माँ मुझे जन्म देकर मर गई! कमली तो वहाँ की मुसलमान यतीम थी, जिसने नाना की पनाह पाकर नानी की सेवादारी के लिए घर में अपनी जगह बना ली। मेरी माँ तो उसकी एक ही बेटी थी, जो मुझे जन्म देकर इस जहाँ से चली गई। यह कौनसी बेटी हुई जो कमली उनकी नातिन बन गई? सोचती रही, पर किसी सवाल का माकूल जवाब पाने में नाकाम रही।

खैर, सिंध छोड़कर हिंद में आ बसे। घर बसा, दुकानदारी शुरू हुई और मेरा फिर से स्कूल में दाखिला हो गया। कमली को घर के काम की, नानी की सेवा की संपूर्ण जवाबदारी उठानी पड़ी। अपनी सेवाएँ देते-देते वह वक्त और माहौल के मुताबिक कभी कमली, तो कभी कमसिन बन जाती, कभी हिंदू तो कभी मुसलमान!

वक्त के चेहरे भी नकाब बदलते हैं। और अचानक एक दिन मेरे बाबा भी हार्ट अटैक सें ग्रस्त होकर चल बसे। नानू इन्तहा तन्हा हो गए। हुईं तो नानी भी, पर अपनी आवाज में खलिश भरकर बात करने में वह बहुत कुछ छुपा लिया करतीं।

पटसन की खाट पर लेटी नानी की टाँगों पर कमली के हाथ देर तक चलते रहे, कभी ऊपर की ओर, कभी नीचे की ओर घूमते हुए देह को सुकून देते रहे। नानी का मन जाने क्यों आज बिना माँ बाप की बच्ची के लिए दुखी होने लगा। अपनी बेटी के साथ-साथ कमसिन की माँ नगीना भी याद आ गई, जो उनके घर में पनाह लेकर, अंत तक निभा गई। भगवान के रहस्य में कब कौन झाँक पाया है? दोनों हमजोली, हमउम्र, अपनी-अपनी बेटियों को अमानत के तौर उसकी गोद में छोड़ गईं...और पल भी नहीं लगा सोचने में कि नानी ने उनको आगोश में भरकर गले लगा लिया, पर बुरा हो इस विभाजन का, जिसने धरती के साथ दिलों के भी टुकड़े-टुकड़े कर दिए। हिंदू और मुसलमान एक-दूसरे के बैरी बन गए। सच तो यह है कि नानी का मन भी यहाँ और वहाँ की यादों के बीच में झूलता रहा।

नानी के अपने रिश्तेदार, भाई-बहन भी इस दरबदर होने के दौर में बँट गए। कुछ यहाँ आए, कुछ वहीं रह गए। ममता की छाती पर दरारें पड़ गईं। बस

एक अपनी नातिन और एक, न अपनी न पराई नगीना की बेटी कमसिन, उन्हें सँभालते-सँभालते अब नानी थक गई थी। उसने भी बहुत कुछ खोया था, बाकी बचे थे चार मोती रिश्तों की माला में, नानू, नानी मैं और कमली।

नानी सोच की गलियों से होती हुई अपनी पटसनवाली खाट पर लेटी-लेटी, कमली की हाथों के दबाव का आनंद लेती रही।

'नानी, गर्मी लगती हो तो पंखा झुलाऊँ। गरम हवा भी तो बहुत है।' मासूम बच्ची के स्नेह भरी आवाज में न जाने क्या था कि नानी का हृदय करुणा से भर गया। अपनी टाँग खींचते हुए, खाट पर उठ बैठी और प्यार से कमली के माथे पर हाथ फेरते हुए कहा–'कमली, अब तू भी देवकी के कमरे में जाकर आराम कर। सारा दिन काम करती रहती है। मेरी बातों को दिल से न लगाया कर। बूढ़ी हो गई हूँ, बड़बड़ की बीमारी हो गई है। आज से तू कमसिन नहीं, बस कमली है, मेरी कमली है.!'

'नानी ....!' कहकर वह नानी के ममतामई गोद में समा गई।

'कल ही तेरे नानू से कहकर देवकी के स्कूल में तेरा भी दाखिला करवाती हूँ। तू भी उसके साथ रहकर पढ़-लिख लेना।'

और दादी की आँखों से दो मोती लुढ़ककर छलके। एक देवकी के लिए, एक कमली के लिए!

माई-बाप

सुगुन अहूजा

चालीस साल का दुर्बल रामू लड़खड़ाता हुआ पेड़ के नीचे उठ खड़ा हुआ, लाठी के आधार पर वह अपनी झोंपड़ी की तरफ सरकने लगा। सामने पेड़ से एक नन्हा पक्षी, फड़कता हुआ उनके सर के ऊपर से गुजरकर, आसमान की ओर उड़ा। रामू ने गर्दन घुमाकर पक्षी को देखा, पर वह उसे सिर्फ एक पल के लिए ही देख पाया, दूसरे पल वह पक्षी आसमान की ऊँचाइयों में गायब हो गया और वह बेमतलब आसमान की ओर देखता रह गया। यकायक, बदन में एक ठंडी सिरहन के साथ, उसे एक ख्याल आया... मौत का! क्या उस पंछी की फड़फड़ाहट में उसके लिए मौत का पैगाम तो नहीं था! उसके होंठों पर फीकी-सी मुस्कराहट आकर ठहर गई। भला, ये भी कोई नई बात होगी क्या? गुजरे कितने हफ्तों से मौत, नसीब और भगवान के खयाल के सिवाय और कोई खयाल उसके पास फटका भी नहीं है।

हाँ, दूसरा भी एक खयाल जरूर है, जो उस अर्से में कभी-कभी उसके छोटे गँवार दिमाग पर भूत की तरह सवार रहा है, मुखिया के गोदाम पर धावा बोलने का। ऐसे ख्याल के वक्त शुरू में उसकी नसें ज्यादा तन जाती थीं, साँस तेज और गर्म हो जाती थी। उस वक्त तसव्वुर ही तसव्वुर में गोदाम के पहरेदारों में से चार-पाँच को अपनी लंबी और मजबूत लाठी से घायल करके जमीन पर पछाड़ देता था। पर सिर्फ चार-पाँच को, ज्यादा को नहीं। हाँ, एक दो बार तसव्वुर पर जोर देकर उसने छः-सात पहरेदारों को जख्मी कर दिया, पर फिर बाकी पहरेदारों के हाथों खुद भी लहूलुहान होकर जमीन पर गिर पड़ा था और उस दिन के बाद वह मर गया था शायद, जब भनक पड़ते ही उसे जेल भेजा गया। मतलब तो उसकी मजबूत बाहें अकेले कभी मुखिया के गोदाम पर हमला न कर पाईं, अनाज की एक गोनी भी हासिल न कर पाई थीं और आजकल तो उसकी निर्बल बाहों के लिए ऐसा गँवार जाँबाज तसव्वुर भी संभव नहीं था।

हिंदुस्तान के गँवार गाँववाले जब कभी ज़िंदगी और मौत के बीच में लड़खड़ाते हैं, तब सिर्फ किस्मत खराब होती है या भगवान उनसे रूठ जाता है। रामू ने एक खुश्क मुस्कराहट के साथ ऊपर आसमान की ओर निहारा और चींटी को कण और हाथी को मन देनेवाले जगत-पिता, अन्नदाता भगवान से मुखातिब होकर कहा–'भगवान, अगर भूख से बेहाल करके चालीस बरस में मारना था तो मुझे पैदा करने की तकलीफ क्यों की? मेरा बाप इस उम्र में दस रोटियाँ एक ही वक्त में खाता था, जब उसकी सारी पलकें सफेद हो गई थीं तब भी वह छः रोटियाँ आराम से खाता रहा। क्या मेरे लिए तुम्हारे पास दो रोटियाँ भी नहीं हैं? मेरे मासूम बच्चों के लिए एक रोटी भी नहीं है? सारे गाँव के मासूम बच्चे भूख से तड़प रहे हैं, उनपर तुम्हें दया नहीं आती? गुजरे हफ्ते गाँव में दस आदमी मर चुके हैं, अभी तक रहम नहीं आता?' पर आसमान या भगवान की ओर से आकाशवाणी के रूप में कोई भी जवाब नहीं आया और धुँधलकी शाम के अँधेरे में दर-दर कहीं कुछ सितारे बदस्तूर बेपरवाही से आँखें टिमटिमाते रहे।

लाठी के आधार पर लड़खड़ाता रामू अपनी झोपड़ी के पास पहुँचा तो उसे अजीब लगा। गरीबों के झोपड़ों के द्वार भी कभी बंद रहे हैं? दो हाँडियों और एक चटाई को भी कहीं चुराए जाने का खौफ रहा है, वह भी शाम के वक्त। आजकल उसका परिवार भी और परिवारों की तरह मौत के साए में जी रहा था।

दरवाजा खड़का और दरवाजा खुला, जिसके खुलते ही एक तेज जायकेदार खुशबू आकर उसकी नाक से टकराई। रामू ने दो-तीन बार 'सूँ-सूँ' करके तसल्ली की, और उसकी नस-नस में ज़िंदगी की हसरत दौड़ आई। बीवी को थैला देकर वह जलते हुए चूल्हे और चूल्हे पर रखी कढ़ाई की ओर लपका, पर उसकी खुशी में डूबी हुई आवाज 'रोटी...रोटी...' हलकी चीख में बदल गई। वह खुद को सँभाल न पाया और जमीन पर गिर गया। गंगा, जिसने रामू के पीछे दरवाजा बंद कर लिया था, एकदम रामू को जमीन से उठाने लगी, पर रामू दुखती-कराहती हड्डियों की परवाह न करते हुए जमीन पर बैठा रहा और खुश्क जबान से सवाल किया–'यह जीवन-रस किसने दिया है?'

'सुनाती हूँ आप उठिए तो सही।'

पर रामू खुद ही चूल्हे की तरफ सरकता रहा और मैले कपड़े पर पड़ी दो गर्म रोटियों के ऊपर दोनों हाथ रखकर, फिर लेट गया। जमीन पर लेटे-लेटे रोटियों को हाथों से लपेटते, खोलते, वह शायद भूल गया कि उसने सवाल किया था कि वह जीवन-रस किसने दिया है। या शायद अब उसे उस जवाब की

जरूरत नहीं रही? पर गंगा को थी, जिसने सुनाना शुरू किया 'सुनते हो मुखिया के बेटे गोविंद के पाँव में मोच आ गई है।'

'हूँ ? हाँ...फिर, चलो अच्छा हुआ!' सर थोड़ा ऊपर उठाकर रामू फिर गरम-गरम रोटियों को लपेटता, खोलता रहा। अब उसने नाक से दो-तीन लंबी साँसें लीं।

'बदरीप्रसाद आया था मुझे बुलाने मालिश के लिए।'

'शामू ने, गोपू ने रोटी खाई है?' सुना-अनसुना करते रामू ने पूछा।

'जी हाँ, बहुत दिनों के बाद रोटी नसीब हुई, इस कारण खाने से ही एक नशा उन्हें घेरे रहा। खाते ही नींद आने लगी, अब सोए हैं।'

'नहीं, नहीं, बाबा, मैं अभी जाग रहा हूँ, मुझे नींद नहीं आ रही है।' रामू के बड़े बेटे ने कहा।

'क्यों शामू?'

'बाबा, मैं सोच रहा हूँ कि कल नहीं तो परसों गोविंद का पैर ठीक हो जाएगा, फिर खाना कहाँ से लाएँगे? उसके सिवा गाँव के और आदमी कब तक घास-पत्तों पर जी सकेंगे? इस गाँव में तीन दिनों में पाँच आदमी पेट के दर्द के कारण मरे हैं। कहते हैं बिहार के गाँव-गाँव का यही हाल है।'

'सो जा!' रामू ने प्यार से झिड़क दिया। उसे शामू की वो बेवक्त की फिलासफी नहीं भाई। इस वक्त उसे अपनी ही सोच का अंदाज भा रहा था। दो दिनों के लिए ही सही, ज़िंदगी को या मौत को कुछ खींच तो सकते थे! सिर्फ दो दिन ही क्यों? दो दिन खाकर, दो हफ्ते और भी मौत का इंतजार किया जा सकता है। रोटियों को हाथ में दबाते, रामू सोच रहा था और उसी बीच सरकार, माई-बाप जरूर कोई-न-कोई बंदोबस्त कर लेगी, थानेदार और मुखिया ने तो एक-दो का आसरा दिया है...। पर वहीं रामू के चेहरे का रंग फीका पड़ गया, अपने आपसे कह बैठा, 'पर वो तो यह एक दो दिन का आसरा, दो महीनों से देते रहे हैं और इसी बीच गाँव के दस आदमी जो तीन महीने पहले मुझ जैसे शेर मर्द थे, मर गए हैं। तीन मुझ जैसे शेर मर्द भूख में मर गए!'

'पर रामू नहीं मरेगा' उसने खुद से कहा और हाथ में लिपटी हुई रोटियों का एक बड़ा निवाला काटा। 'हाँ रामू नहीं मरेगा, बस नहीं मरूँगा।' खुद को भरमाते हुए, मुँह को चलाते हुए, आँखों को मटकाते हुए वह फुसफुसाता रहा।

यहाँ उसे गंगा की हाजिरी का अहसास हुआ, जो टकटकी बाँधे उसे देख रही थी।

'तूने भी खाई है न रोटी?' रामू ने पूछा।

'तुम खाओ, मुझे भूख नहीं है। बदरी की बीवी ने जोर करके खिलाया, आधी रोटी से ज्यादा न खा सकी। डर था कहीं कुछ हो न जाए। बहुत दिनों के बाद ऐसे एकदम से ज्यादा खाया जाता है क्या?'

'पगली, दो-तीन रोटियाँ खाकर आती।'

'हाँ, माँ खाकर आती ना!'

'तुम, अभी तक जाग रहे हो?'

'हाँ बाबा, मैं अभी तक सोच रहा हूँ...!'

'बाँवले, अभी तक क्या सोच रहे हो?' रोटियों से एक और छोटा निवाला काटते रामू ने पूछा।

'बाबा, सरकार को माई-बाप क्यों बुलाते हैं?'

'क्योंकि वह माँ-बाप की तरह सार-सँभार लेती है।'

'पर आपने खुद खाने से पहले अम्मा से हमारे बारे में पूछा, और अम्मा ने तो अभी तक खाया ही नहीं, क्या सरकार...?'

'जहन्नुम में जाय तेरी सरकार और उनके साथ तू भी। मैं पूछता हूँ, इतनी गहराई से तुम सोचते ही क्यों हो?' और उसने तीसरा निवाला रोटी का लिया।

'पर बाबा, मैं कहाँ जान-बूझकर ये सब सोचता हूँ। भूख में खुद ही ऐसी बातें दिमाग में चली आती हैं।'

'बहुत बड़ा दिमाग है न बावले।' रामू ने निवाला गले के नीचे उतारते हुए अपने 'जहन्नुम' की कही कड़वी बात पर प्यार का हलका रंग चढ़ाते हुए कहा।

सचमुच शामू के साथ रामू का लगाव था, गाँव के और गँवार जवानों की भेंट में शामू की समझ लासानी थी। शामू की इसी बात पर रामू को गर्व था । जैसे एक बाप को अपने सहारे पर नाज होता है, जिसमें शामू की दो मजबूत बाहें भी शामिल थीं। उसे शामू के उस प्यार से भी प्यार था, जो माँ और छोटे भाइयों पर भी निछावर हो जाता था। प्यार से कुर्बानी उत्पन्न होती है। यही कुर्बानी प्यार की गहराइयों को पार करके कभी-कभी तड़प भी उठती है इजहार के लिए। रामू और गंगा का इस वक्त यही हाल था। इजहार की तड़प जब इंतहा की ओर बढ़ी तो और कुछ न कहकर फकत बेटे को 'बावला' ही पुकार सका। रामू ने गंगा की ओर देखा। उसने सब-कुछ सुना था। उसके चेहरे पर गर्व और प्यार झलक रहा था। 'माँ-बाप' का गर्व और प्यार।

रामू कुछ सरककर गंगा के साथ सटकर बैठा। फिर 'अधूरे इजहार' ने गंगा के कंधों पर बाहें डालीं, उन बाकी बची रोटियों वाली मुट्ठी उसके मुँह के आगे लाई, मुँह से लगाई और आहिस्ते आहिस्ते दबाता रहा। गंगा के सामने अब अपनी कुर्बानी का सवाल नहीं रहा था। आखिरी निवाला निगलते हुए जाने कितने सालों के बाद, गंगा ने रामू की उँगली को हलके से काटा। काटकर वह छलक उठी! टप, टप, टप...आँसू, और फिर...सिसकियाँ।

शामू ने, पिता को माँ की तरफ सरकते देख, करवट बदल ली थी। सिसकियों की आवाज पर गर्दन उठाकर देखा, पर माँ को पिता की गोद में देखकर, उसने गर्दन फेर ली... और गर्दन को फेरने के साथ-साथ शामू को रोना आ गया।

गरम स्पर्श

अर्जुन चावला

कैप्टन मनीष को आसाम से नागालैंड में तबादले का ऑर्डर मिला तो दिल कुछ उदास होने लगा। पर और भी बहुत सारे साथियों को तबादले के ऑर्डर आए थे यह जानकार कुछ ढाढ़स मिला। सोचा, कुछ तो दोस्त साथ होंगे। वक्त अच्छा बीतेगा।

नागा विद्रोहियों की सरगरमियाँ काफी बढ़ी हुई थीं। यही देखते हुए पहाड़ी फौज की चार बटालियन कोहिमा में भेजना जरूरी समझा गया। कैप्टन मनीष कोहिमा रेजीमेंट हैडक्वार्टर पर हाजिर हुए तो उसकी कंपनी को कोहिमा से 60 किलोमीटर की दूरी पर खूबसूरत पहाड़ियों के दामन में फौजी कैंप में पहुँचने का आदेश मिला। जैसे ही वे कैंप पहुँचे तो चारों ओर नजर फिराते हुए बहुत प्रसन्न हुए। चारों तरफ ऊँचे पहाड़, उनपर साल और देवदार के पेड़। नीचे मैदानों में चारों ओर मीलों तक फैली हरियाली और सब्ज मखमली घास। तरह-तरह के कुसुमित पुष्पों ने उसका मन मोह लिया। दूसरे दिन शाम को जीप में कैंप से दो मील की दूरी पर निरीक्षण चौकी का मुआयना करके लौटे तो रास्ते में छोटे से रेस्टोरेंट में कॉफी पीने के लिए जीप रोक दी। भीतर कोने में पड़ी टेबिल पर कॉफी का ऑर्डर देकर बैठे ही थे कि उनकी नजर कुछ दूर बैठे एक जोड़े पर गई। दोनों ने मुस्कराते, गर्दन हिलाकर कैप्टन का अभिवादन किया। कैप्टन ने देखा कि दोनों स्थानीय थे। नौजवान टी-शर्ट और जीन्स में और चेहरे-मोहरे से नागा। पर लड़की स्कर्ट व ब्लाउज पहने हुए, खूबसूरत सुडौल जिस्म, नाक-नक्श तीखा! दोनों ने आपस में कुछ खुसुरफुसुर की और उठकर कैप्टन के पास आए।

'हैलो सर, मे वी गिव यू कंपनी?'

'ओ श्योर-श्योर।' कैप्टन ने चारों तरफ पड़ी कुर्सियों की ओर इशारा कराते हुए कहा। पहाड़ी वेशभूषा में बैरा कॉफी लेकर आया तो कैप्टन ने उसे

दो कप और लाने के लिए कहा। बैरा कॉफी रखकर चला गया, पर वे तीनों तब तक चुप रहे। आँखों में हल्की मुस्कराहट, पर बिना कुछ कहे नागा नौजवान ने कॉफी का कप कैप्टन की ओर बढ़ाया।

'थैंक यू।'

कैप्टन ने कप लेकर उन्हें भी इशारा किया।

'डॉली वांगजू', नौजवान नागा ने पास बैठी लड़की के कंधे पर हाथ रखते हुए उसका नाम बताया।

'मी फिलिप' फिर अपना नाम दोहराया। कैप्टन ने मुस्कराते हुए अपनी पहचान दी 'मनीष'।

कैंप में लौटकर मनीष हाथ-मुँह धोकर रात को मेस (भोजन-कक्ष) में डिनर खाने गया। वहाँ बातों-बातों में उसने मेजर खन्ना को नागा जोड़े के साथ हुई मुलाकात के बारे में बताया।

'जोड़ी तो बहुत खूबसूरत थी, पर पता नहीं चला कि उनका आपसी रिश्ता क्या है?'

कैप्टन ने बड़ी चाह के साथ कहा।

'पर आपको चिंता क्यों है कि वे आपस में क्या लगते हैं?'

'नहीं, नहीं, मेरा उसमें क्या!' कैप्टन ने तत्पर जवाब देकर बात को टाल दिया।

दूसरे दिन पूर्व निर्धारित प्रोग्राम के अनुसार बागियों के खिलाफ अभियान में तीन दिन के लिए जाने का ऑर्डर मिला। कैंप से लारियों का काफिला उत्तर-पूर्व की तरफ रवाना हुआ तो नौजवानों में उत्साह था। उनके चमकते चेहरों से यूँ जान पड़ता था कि वे मैदान मारकर लौटेंगे।

कैंप से रवाना होने पर मैदानी इलाके से गुजरता लारियों का काफिला थोड़ी देर के लिए मिट्टी के गुबार में गुम हो गया। सिर्फ लारियों की इंजन की गड़गड़ाहट और जू-जू की आवाज सुनाई दे रही थी। कुछ देर के बाद मैदानी इलाका पार करके काफिला जैसे बोम-ला पहाड़ी के कच्चे रास्ते से ऊँचाई चढ़ने लगा, वैसे ही गुब्बार पीछे रह गया। दूर से जटिल पहाड़ी पगडंडियों में लारियों का सिलसिला इतना छोटा-सा लग रहा था मानो बच्चों ने अपने लारीनुमाँ खिलौनों में चाबी भरकर एक-दूजे के पीछे छोड़ दी हों। कैंप में पीछे रह गए जवान हाथ हिलाकर काफिले को देर तक विदा कराते रहे। पल में ही काफिला ओझल हो गया। तीन दिन के बाद काफिला लौटा। मुखबिरों की सूचनानुसार

फौजियों द्वारा बोम-ला पहाड़ियों के पीछे बागियों के अड्डों को चारों तरफ से घेराव के पहले ही बागी फरार हो गए। सारा इलाका छान मारा, फिर भी कोई सुराग नहीं मिला।

कैप्टन मनीष दोस्तों के साथ 'मेस' में गप-शप करने के बावजूद बोरियत महसूस करने लगा था। एक दिन फिर जीप में बैठकर कैंप से बाहर जाकर उसी रैस्टोरेंट में कॉफी पीने के लिए पहुँचा। भीतर पहुँचा तो उसकी नजर डॉली वाँगजू पर पड़ी, जो कोने में पड़ी टेबिल पर अखबार पढ़ रही थी। इस बार वह अकेली थी। कैप्टन मनीष अभी दूसरे कोने में पड़ी कुर्सी पर बैठ ही रहा था कि डॉली वहाँ से उठकर उसके पास आई।

'हैलो कैप्टन।' डॉली ने मुस्कराते हुए उसका अभिवादन किया।

'हैलो मैडम! हाउ डू यू डू?'

मनीष उसका नाम भूल गया था। डॉली ने उसे याद दिलाते हुए कहा, 'डॉली सर!'

'ओह डॉली प्लीज!' कैप्टन ने अपनी गलती स्वीकारते हुए कहा।

डॉली फौरन दूसरी कुर्सी पर बैठी और उससे तीन-चार दिन नजर न आने का कारण पूछा। पर मनीष ने 'कैंप से आने का मौका न मिलने' की वजह बताकर बात वहीं ख़त्म कर दी। दोनों ने मिलकर कॉफी पी। मनीष ने डॉली से उसके माँ-बाप के बारे में जानना चाहा। डॉली ने उसे बताया कि वह मिशनरी स्कूल से दो साल पहले मैट्रिक पास कर चुकी है। उसके माता-पिता दोनों मिशनरी स्कूल में टीचर थे। स्कूल के बाद दोनों मिशनरी के प्रचार का काम करते थे।

मनीष रह-रहकर डॉली की आँखों में निहारता रहा; उनमें बेहिसाब कशिश थी। बॉबकट सुनहरी बालों की लटें कभी-कभी हवा के झोंके से उसके सुर्ख गालों को चूमने की कोशिश कर रही थीं, जिन्हें डॉली बाएँ हाथ की कनिष्ठिका के लंबे नाखून से निहायत खूबसूरत अंदाज में हटाती रही।

मनीष उसके चेहरे को बार-बार गौर से देख रहा था। सोच रहा था कि डॉली का नाक-नक्श न बर्मी था, न ही चीनी वंश का। पहाड़ियों की तरह उसका नाक चिपटा और समतल भी नहीं था। बल्कि उत्तरी भारत के मैदानी इलाके के आर्यवंश का नाक-नक्श था। बेपनाह हुस्न का ऐसा बुत देश के दूर-दराज घनी पहाड़ियों व वादियों में भी मिल सकता है। वह सोचता रहा।

मनीष का जी उठने को नहीं हो रहा था। पर कैंप में वक्त पर पहुँचना

था। इसलिए डॉली की ओर मुस्कराकर उठने लगा। डॉली ने एक अजीब मुस्कराहट के साथ कंधे को एक मामूली झटका देकर इजाजत लेनी चाही, तो मनीष से रहा नहीं गया। डॉली का हाथ हाथों में थामकर उसकी आँखों में झाँकता रहा, जैसे उसके बेपनाह हुस्न को नजरों से एक ही घूँट में पीना चाहता हो। डॉली की मस्ती-भरी निगाहों में मनीष पल-भर के लिए अपनी सुध-बुध भुला बैठा। अचानक हाथ की उँगलियों पर डॉली के सुर्ख लबों का स्पर्श महसूस करते हुए होश में आया। उसका चेहरा सुर्ख हो गया। खुद को सँभालते हुए अगले दिन मिलने का वादा करते हुए वह मुस्कराकर जीप में सवार होकर चला गया। पर रास्ते भर में एक अनोखा अहसास उसके साथ रहा। एक अजीब मादकता उस पर हावी रही। कैंप में लौटकर थोड़ी देर के लिए वह अपने तंबू में जाकर लेटा। काफी देर तक किसी खूबसूरत ख्याल ने उसका पीछा नहीं छोड़ा। काश, डॉली के साथ व्याह रचाकर उसे राजस्थान में अपने घर लेकर जा सकता। आकाश की इस अप्सरा को अपनी बाँहों में भरकर प्यार करता, या कभी सामने बिठाकर सजदा करता। डॉली को हासिल करके, काश वह स्वर्ग के असली आनंद का अनुभव कर पाता। घड़ी-पल की मुलाकात में मनीष को डॉली की शांत नीली आँखों की गहराई में एक अजीब कशिश के साथ-साथ नजदीकी और अपनापन भी नजर आया था।

दूसरे दिन फिर बागियों के खिलाफ अभियान का दूसरा चरण उत्तर-पश्चिम की तरफ जो-ला पहाड़ियों की घाटियों में निश्चित हुआ। शाम के वक्त अँधेरा होने के बाद मुखबिरों की गुप्त सूचना के अनुसार फौजी दल जो-ला पहाड़ियों की तरफ रवाना हुआ। बागियों का दल जो-ला की बड़ी पहाड़ी के पीछे छिपे रहने की जानकारी थी। फौजी जवानों ने जो-ला दर्रे से काफी पहले लारियों को रोका और हथियारों के साथ पैदल चल पड़े। चाँदनी रात थी। दुश्मन की नजर न पड़े इसलिए छोटी-छोटी टोलियों में जो-ला दर्रे के नजदीकी द्वार पर पहुँचे और फौरन दो-दो आदमियों के ग्रुप में तितर-बितर होकर पहाड़ियों के घने झुंड की ओट में छुपकर मोर्चे सँभाले बैठे रहे। कैप्टन मनीष ने अपने साथ तेज करन को रख लिया।

अमावस के बाद चौथे दिन वाला चाँद बहुत देर न रुक सका। अँधेरा जैसे-जैसे बढ़ने लगा वैसे-वैसे सिपाहियों की बेसब्री बढ़ने लगी। पता नहीं, शायद सारी रात यूँ ही टोह में बैठे गुजर जाए। यूँ ही इंतजार करते रात का अंतिम पहर आ गया। अचानक जो-ला दर्रे के छोर पर ऐसे लगा, जैसे कुछ धुँधली परछाइयाँ

बिना आवाज के आगे बढ़ रही हैं। टोह में बैठे फौजी दल के सिपाहियों में हरकत आ गई। सभी हाथ राइफलों और मशीनगनों के ट्रिगरों पर पहुँच गए और कैप्टन मनीष के ऑर्डर का इंतजार करने लगे।

धुँधली परछाइयाँ काले लिबास में धीरे-धीरे उन झाड़ियों के घने झुरमुट की तरफ बढ़ रही थीं, जिनकी ओट में कैप्टन मनीष और सूबेदार तेज करन टोह में बैठे थे। दूसरे दल से एक फौजी की राइफल से अचानक गोली चल जाने से दो साये एक तरफ दौड़े, और दो कैप्टन के दल की तरफ। कैप्टन की पिस्तौल की गोली से एक गिर पड़ा। फौजी दस्ते के लिए कैप्टन का यह इशारा जैसे ऑर्डर था। चारों तरफ से मशीनगनों से गोलियों की बौछार शुरू हो गई। जवाब में बागियों ने गोलियाँ चलाईं, पर कुछ देर के बाद जवाबी गोलियों की आवाज शांत हो गई। फौजी दल की गोली-बारी जारी रही। काफी देर तक जवाबी गोलियों के न आने से फौजी दल ने भी गोलीबारी बंद कर दी।

पौ फटते ही रोशनी का प्रभामंडल बढ़ने लगा। फौजी पहाड़ियों से निकलकर अपने शिकार को कब्जे में करने के लिए उतावले हो रहे थे। पर कैप्टन ने उन्हें रोका, कि कहीं दुश्मन ताक लगाए बैठा हो और अचानक हमला कर दे। इसलिए सिर्फ दो फौजी जाकर लाशों का निरीक्षण करें। दो नौजवानों ने आगे बढ़कर झाड़ियों से लाशें ढूँढ निकालीं। कुल दो लाशें मिलीं। शिनाखत करने की कोशिश की गई, पर बेकार। इतने में कैप्टन और साथी भी पहुँच गए। बागियों की लाशों की पहचान पाना मुश्किल काम था। शक्ल से एक मर्द लग रहा था तो दूसरी औरत। दोनों ने गहरे नीले रंग की बुश्शर्ट और जीन्स पहनी हुई थी। जैसे ही दो जवानों ने उलटी पड़ी लाशों को सीधा करके लिटाया तो कैप्टन अकस्मात चौंक उठा। 'डॉली! फिलिप! माइ गॉड।' ऐसा कहते कैप्टन का चेहरा शांत और गंभीर हो गया। झुककर उसने डॉली के सर्द चेहरे से बालों की लट अपनी गरम उँगलियों से हटाकर दूर कर दी। पर डॉली का सर्द चेहरा मनीष की उँगलियों का गरम स्पर्श महसूस कर न सका!

जड़ों से उखड़े

अनवर शेख

मास्टर दीन मुहम्मद और उसकी पत्नी करीमा एक बेटा और एक बेटी औलाद के रूप में पाकर धन्य हो गए थे। दोनों बच्चे अभी प्राइमरी में पढ़ रहे थे। आस-पड़ोस की तरह उनका भी पक्की छत और कच्ची ईंटों का बना हुआ मकान था। बाकी घर में सामान के नाम पर पर्याप्त रूप में चारपाइयाँ, एक पानी का कूलर, एक बड़ी पेटी, एक छोटी ट्रंक, एक पंखा और कुछ खाने-पीने के बर्तन के सिवाय और कुछ न था। तनख्वाह खाने-पीने व कपड़े-लत्ते में पूरी हो जाया करती थी।

रात को खाने के पश्चात् दोनों पति-पत्नी एक-दूसरे को लतीफे सुनाया करते थे और ऐसे ही बातचीत करते मास्टर दीन मुहम्मद पत्नी के आगोश में ही नींद की वादियों में सैर करते रहते। रोज सुबह दोनों जल्दी ही उठकर नमाज पढ़ते और फिर नाश्ते से मुक्त होकर मास्टर और बच्चों को स्कूल रवाना करके करीमा घर की सफाई और दूसरे कामों में व्यस्त हो जाती थी। मास्टर दीन मुहम्मद के घरवालों के दिन और रातें बहुत संतोष व शांति से गुजरते थे।

एक दिन आसमान में काले बादलों ने कुछ ऐसे आक्रमण किया कि संपूर्ण धरती की रूह दहशत से घिर गई। शाम के वक्त मास्टर दीन मुहम्म्द का पड़ोसी बेलदार बद्राल्दीन मास्टर के घर आया और कहने लगा–'मास्टर! आसमान पर समूचा समंदर चढ़ आया है। अल्लाह पनाह दे। आपके घर की छत तो फिर भी मजबूत है, पर मेरी छप्पर तो शायद पहला वार भी न झेल पाए।'

'बंधु, अल्लाह खैर करेगा। बारिश बरसानेवाला भी मौला तो हम भी उसी के। हमें किस बात की परवाह। उसके संरक्षण में हैं।' मास्टर दीन मुहम्मद ने बेलदार बद्राल्दीन को ढाँढस बँधाते हुए कहा। उसे भरोसा था कि जो छत देता है, वही निगाहबाँ भी बनता है। बद्राल्दीन ने आँगन में पड़ी खाट पर बैठाकर राजदारी वाले लहजे में मास्टर से कहा।

'भाई मास्टर, तुम्हारे साथ दिल की बात करता हूँ। मेरे पास कुछ पैसे हैं। वे तुम इन बारिश के दिनों में अपने पास अमानत समझकर रख लो। बारिश खत्म होते ही मैं आकर ले जाऊँगा।'

'कितने पैसे हैं?' मास्टर ने भी उसी राजदारी वाले लहजे में पूछा।

'इकसठ हजार हैं।'

'यार कमाल करते हो, इतने पैसे घर में रखकर बैठे हो? वो भी ऐसे दंगे-फसादों के दौर में?'

'भाई क्या करूँ, इसी कारण तो यह कर रहा हूँ। बैंक पर भी भरोसा नहीं। अगर मुल्क में जंग छिड़ी तो बैंकों ने भी पैसा देने से इंकार कर दिया तो मैं क्या करूँगा? इसलिए रात को सिरहाने के पास रखता हूँ और दिन में जैकेट के भीतरी जेब में।'

और फिर तत्काल कुछ सोचते हुए दोनों हाथ जोड़ते हुए मास्टर से कहा–'बंधु, अल्लाह का वास्ता है, तुम्हें भला समझकर ऐतबार किया है। राज को राज ही रखना।'

'नहीं, नहीं, दिलासा रखो। इतना कच्चा समझा है क्या?' मास्टर ने ढाढ़स बँधाया तो बद्राल्दीन को शांति मिली।

'तुम्हें' अगर कच्चा समझता तो भला यहाँ आता? पड़ोसी और भी बहुत हैं। तुम अपने हो, बड़ी बात यह कि नेक भी हो। इसीलिए तो सीधा तुम्हारे पास आया हूँ।'

अचानक आसमान में जोरदार कड़कती बिजली ने तड़पना शुरू किया तो दोनों चौंक पड़े। करीमा ने, सिवाय उस खाट के जिस पर दोनों बैठे थे, बाहर रखा सारा सामान कोठरी के अंदर ले लिया। बद्राल्दीन ने जैकेट की भीतरी जेब से प्लास्टिक की काले रंग की लाली से बँधी थैली निकालकर मास्टर को देते हुए कहा–'बंधु, गिन लो।'

मास्टर ने घर की दीवारों और पड़ोस की छतों की ओर जल्दी से नजर फिराई और उठकर बाहरवाला दरवाजा बंद करके वापस खाट पर बैठकर सारा पैसा गिन लिया। गिनकर वापस उसी थैली में उसी अंदाज से लपेटकर थैली कुर्ते की जेब में रख ली।

बद्राल्दीन ने उठते हुए कहा–'अब मैं चलता हूँ। राजी अकेली है। दुकान से चावल लेकर दूँ तो बारिश से पहले ही पका ले।'

मास्टर दीन मुहम्मद, बद्राल्दीन के साथ दरवाजे तक आया।

'मास्टर, हम दोनों पति-पत्नी के पीछे तो कोई है नहीं, न कोई औलाद हुई। मैं अगर मर जाऊँ तो पैसे मेरी पत्नी राजी को दे देना।'

बद्राल्दीन ने मायूस चेहरे से दरवाजे के पास खड़े होकर मास्टर दीन मुहम्मद से कहा–'भाई, खैर माँगो, अल्लाह तुम्हें लंबी उम्र देगा। पहले क्या कभी बारिश नहीं हुई क्या, जो इतना उदास हो रहे हो।'

मास्टर दीन मुहम्मद ने बद्राल्दीन को रवाना करके दरवाजा बंद किया। करीमा आँगन में पड़ी खाट को पीठ पर लादे अंदर रख रही थी। उसके बाद चूल्हे पर पक रहे चावल को धीमी आँच पर रखा और आकर मास्टर के सामने पड़ी खाट पर बैठते हुए कहा–'पराए पैसे लिए तो हैं, पर रखोगे कहाँ?'

'क्यों इतने ज्यादा हैं क्या, जो घर में नहीं समा सकते?'

'छोटी ट्रंक में रख दो।'

मास्टर दीन मुहम्मद ने पैसोंवाली थैली पत्नी को दी, जिसने उठकर बड़ी संदूक पर रखी छोटी ट्रंक में कपड़ों की तहों के बीच पैसे सँभालकर रखे और ट्रंक को ताला मार दिया।

बाहर बारिश की हल्की बूँदाबाँदी शुरू थी। सबने मिलकर ताँबे के थाल में चावल के ऊपर मिठाई डाली। उसमें दूध डालकर खा लिया। बच्चे चावल खाकर सो गए। धीरे-धीरे बारिश में तेजी आती गई। काला आसमान भूखे शेर की तरह गर्जना कर रहा था। बिजली बंद थी। धरती पर रोशनी का नामोनिशान न था। घरों के भीतर व बाहर एक-जैसा अँधेरा था। गर्मी इतनी ज्यादा न थी, फिर भी कमरों में घुटन थी। दीन मुहम्मद ने लालटेन जलाकर चबूतरे के कोने में रख दी। हल्की रोशनी कोठरी में सहमी-सहमी लग रही थी। पैरों की ओर खुले दरवाजे पर दीन मुहम्मद की नजर थी। सिरहाने पड़ी बड़ी संदूक पर रखी छोटी ट्रंक रखी थी, जिसमें बद्राल्दीन की अमानत के रूप में इकसठ हजार रुपये रखे थे।

यह पहली रात थी। दीन मुहम्मद और करीमा खाट पर सीधे सोए हुए थे। वर्ना वो अक्सर साँप की तरह एक-दूसरे से लिपटे रहे होते थे। नींद आने तक लतीफों के साथ हल्की हँसी उनके कमरे में बरकरार रहती थी। बाहर गर्जना और भीतर खामोशी थी। दीन मुहम्मद अचानक ख्याल आते ही उठा और जल्दी से कोठरी का दरवाजा बंद करते हुए लौटा तो करीमा ने कहा–'ये क्या करते हो, कमरे में पहले से घुटन है, मारोगे क्या?'

'खैर करो, एक रात में क्या होगा, मरेंगे क्या?'

'पर आखिर क्यों, कोठरी का दरवाजा क्यों बंद करते हो? बाहर वाला तो बंद है।'

'बाहरवाला तो बंद है, पर फिर भी मुसीबत क्या पूछकर आती है?'

करीमा चुप हो गई। दीन मुहम्मद को नींद आ गई।

बद्राल्दीन के कच्चे मकान में बारिश गजब ढा रही थी। कड़कती बिजली की आवाज जंग के जहाजों की तरह गरज रही थी। कोठी की छत का एक हिस्सा यूँ टपक रहा था जैसे उस जगह पर कोई छत ही न थी। टपकती छत के नीचे बद्राल्दीन की पत्नी ने बाल्टी रखते हुए कहा—'बारिश से तो सामना कर लेंगे, पर अगर कल मास्टर ने मानने से इंकार कर दिया तो तुम्हारे पास कौनसे गवाह हैं, जो तुम सामने लाओगे।'

बेलदार बद्राल्दीन, जो कोठी के भीतर मजबूत छत की ओर खाट पर बैठा था, वह पत्नी की कही बात पर गौर करने लगा। राजी बाल्टी रखकर आकर जब पास में बैठी तो उसके मुँह की तरफ देखते हुए कहा—'यह तुम्हारा बेकार का भरम है। तुम मास्टर को नहीं जानतीं। पराई चीज से दूर रहता है।'

'अरे बद्राल्दीन, इंसान को बदलने में देर तो नहीं लगती?'

'नहीं, नहीं, तू चिंता न कर। मैं नहीं समझता कि मास्टर ऐसा करेंगे।'

'करीमा, करीमा, ओ करीमा! अरे उठो तो गजब हो गया?'

मास्टर दीन मुहम्मद जोर से चिल्लाने लगे।

'क्या हुआ, क्या हुआ?'

करीमा ने हैरान नजरों से पति की ओर देखा। बच्चे पिता के चिल्लाने पर उठकर रोने लगे।

'अरे वह देखो, पेटी नहीं है। चोर ले गए।'

पति की इस बात से करीमा की साँसों में राहत आई। ठंडी साँस लेते हुए कहा—'पता है, मैंने उठाकर खाट के नीचे रख दी है।'

परेशानी में पसीने से तर दीन मुहम्मद ने लालटेन उठाकर खाट के नीचे देखा, जहाँ ट्रंक पड़ी थी। फिर संतोष की साँस लेते हुए करीमा को गुस्से में कहा—'किस समय रखी? मुझे क्यों नहीं बताया?'

'तुम नींद में थे। मुझे चिंता हुई तो धीरे से उतारकर खाट के नीचे रख दी।' करीमा ने बच्चों को उनकी खाट पर सुलाते हुए कहा।

दीन मुहम्मद ने दरवाजा खोलकर आँगन में लालटेन की रोशनी से जाँच

की। बारिश बंद हो चुकी थी। आसमान चुप था, पर धरती पर मेढकों की टाँ. ..टाँ... और छप्परों के झूलने की आवाज जारी थी। जैसे उन्होंने बारिश और गर्जना का भार ले लिया हो। दरवाजा बंद करके चबूतरे पर रखे ताले को उठाकर दीन मुहम्मद ने दर के भीतर देखा। करीमा जम्हाई लेते हुए उसे देख रही थी, पर कहा कुछ नहीं। दोनों फिर आकर खाट पर साथ सो गए। छत की ओर निहारते दीन मुहम्मद ने कहा–'जबसे ये कमबख्त आए हैं, नींद ही उड़ गई है। मुझे याद नहीं कि कभी इस वक्त भी मेरी नींद खुली हो।'

'पराई अमानत है न, इसलिए चिंता हो गई है।'

दीन मुहम्मद ने भी उसी परेशानी वाले अंदाज में कहा–'अपने होते तो क्या चिंता न होती?'

'अपने तो बैंक में रखते, घर में क्यों रखते?'

'बैंक में रखती! अगर जंग छिड़ जाती और बैंक पैसा न देती तो?'

करीमा खाट पर उठकर बैठी। पति के चेहरे को देखने लगी। कमरे में नींद की खुमारी छाई थी। हल्की रोशनी परेशानी की तरह काँप रही थी।

'ये तो दौलत में खतरे होते हैं?' दीन मुहम्मद ने जवाब दिया। करीमा फिर खाट पर लेट गई और फुसफुसाहट भरे अंदाज में कहने लगी–'जाने क्या चक्कर है। हमारे पास तो इतनी बड़ी रकम कभी आई नहीं, जो कुछ आता है, वह तो महीने में ही पूरा हो जाता है।'

'अब चुप करके सो जाओ।'

अभी आँख भी न लगी थी, दीन मुहम्मद के कानों पर कमरे की दीवार के पीछे कुछ आवाजें सुनाई दीं। वह उठकर बैठा और पत्नी को भी जगाते हुए कहा–'लगता है, चोर दीवार में ठोक रहे हैं।'

'उस तरफ है भी खाली...!' करीमा ने भयभीत स्वर में कहा।

'फिर क्या करें, हमारे पास तो कोई हथियार भी नहीं है।'

दीन मुहम्मद भी डर से काँपने लगा।

'बाहर का दरवाजा खोलकर पड़ोसी को जाकर उठाओ।'

'दरवाजे पर खड़े हों तो?' दीन मुहम्मद ने अपना शक जाहिर किया तो करीमा का वजूद डगमगाने लगा।

'अरे हमारे तो छोटे बच्चे हैं। अगर वे अंदर आएँगे तो हम क्या करेंगे?'

करीमा रोने लगी तो दीन मुहम्मद को एक तरकीब सूझी। उसने कहा–'कोठे पर चढ़ जाता हूँ। ऊपर से देखकर तसल्ली करूँ फिर वहीं से 'चोर–

चोर' पुकारूँगा।'

यह तरकीब सोचकर दीन मुहम्मद धीरे से खाट से उठकर दरवाजा खोलकर दबे पाँव आँगन से होते हुए लकड़ी की सीढ़ी पर चढ़ता हुआ कोठे पर पहुँचा। पीछे की तरफ पहुँचकर खबरदारी से सिर उठाकर नीचे की ओर देखा, जहाँ सिर्फ अँधेरा था। गौर से देखने पर समझ आया कि दीवार के पास होती हरकतों की परछाइयाँ दो गधों की थीं, जो आपस में दीवार की ओट में अपना बदन एक-दूसरे से घिस रहे थे। मास्टर सुकून की साँस लेकर नीचे उतरा। बारिश बिल्कुल बंद थी। काले आसमान में कहीं-कहीं सितारे जाहिर हो रहे थे। कोठरी में पहुँचकर सारी बात करीमा को सुनाई तो करीमा की कँपकँपाहट कम हुई और उसने इत्मीनान की साँस ली।

बेलदार बद्राल्दीन अपने आँगन मे बिछी खाट पर सोया हुआ था। नींद, उससे कोसों दूर थी। कोने में रखी बाल्टी में किसी वक्त छत से पानी की बूँद लरजकर गिर जाती। बारिश बंद थी, पर छत के उस कोने में शायद पानी ठहर गया था।

अजीब किस्म का ख्याल बद्राल्दीन को मथ रहा था। जबसे उसकी पत्नी ने इशारा किया था, तबसे उसे नींद नहीं आ रही थी। वह सोचता रहा।

'ईमान मेहमान है। मेरा तो कोई गवाह भी नहीं है। अगर वह बेईमान हो जाता तो क्या किया जा सकता है?' फिर पलटकर सोने की कोशिश की। उसे खुद पर गुस्सा आने लगा। सोचों में खुद से बतियाता रहा।

'ये क्या कर बैठे हो? इतनी बड़ी खता, इतनी नामसमझी! मास्टर की कितनी आमदनी है जी? मैं भी तो इतने पैसे बगैर किसी सबूत के उसे दे आया? अब क्या वह मुझे लौटा देगा?'

अंदर से ऐसे ख्यालों का तहलका मचा हुआ था। इस बार खाट पर उठकर बैठने की बजाय सीधा जमीन पर खड़ा हो गया। दरवाजे के बाहर झाँका। बारिश बंद हो चुकी थी। उसने सोचा–

'वह ऐसे कैसे कर सकता है? मेरे हराम के पैसे नहीं हैं। मैंने पेट काटकर पैसा जमा किया है। अगर उसने कुछ खयानत की तो मैं उसका खून कर दूँगा। फिर भले ही मैं जेल चला जाऊँ, पर मास्टर को पैसे पचाने नहीं दूँगा।' कोठरी वे भीतर हल्की रोशनी बद्राल्दीन के गुस्से की तरह फड़क रही थी।

कुछ देर ये ख्याल उसके मन को घेरे रहे। जब मन कुछ शांत हुआ तो उसने अपने भ्रम को बेमतलब समझा।

'नहीं, नहीं, मैं गलत समझ रहा हूँ। मास्टर ऐसा आदमी नहीं है। यह तो इकसठ हजार हैं। पर अगर इकसठ लाख भी होते तो भी मास्टर ऐसा नहीं करते। मैं अरसे से उन्हें जानता हूँ।'

इस विचार से उनके मन में कुछ चैन आया। राजी जो खाट पर सोई अपने पति को देख रही थी, उसने जब बद्राल्दीन को इतना परेशान देखा तो उठकर खाट पर बैठते कहा–'हम भी तो परेशान हैं ना। वो अगर हमारे पास होते तो क्या इतनी चिंता होती हमें?'

बद्राल्दीन ने दरवाजे के पास खड़े होकर कहा–'एक महीना पहले चोर कादनवालों के घर से बारिश में ही तो ले गए थे! दूसरी बात बारिश में भीग न जाएँ, इसी ख्याल ने मुझे दूसरी ओर सोचने ही न दिया।'

'चोर क्या मास्टर के घर नहीं जा सकते? हम अपनी दौलत चोरों को क्या आसानी से देते? मास्टर तो चोरों को कुछ कहेंगे भी नहीं। कौनसी अपने खून-पसीने की कमाई है उनकी?'

पत्नी की इस बात ने बद्राल्दीन के हृदय में घाव कर दिए। भीतर की आशाओं को सहरा की खुश्क रेत की तरह महसूस किया। एक इसी बात ने सभी अंगों की शक्ति ही छीन ली। उफ कहकर वहीं खाट पर पत्नी के पास बैठ गया।

रात के तीन बज रहे थे। मास्टर दीन मुहम्मद ने पत्नी से कहा–'पेटी की चाबी तो दो।'

'क्यों?'

'तुम दो दो!'

करीमा ने उठकर चाबी दी। दीन मुहम्मद ने खाट के नीचे से पेटी हटाई, खोलकर उसमें से पैसों वाली थैली निकालकर पेटी बंद की। थैली को तकिए के गिलाफ में अंदर रखकर, तकिया सिर के साथ सटकाकर सोया ही था कि इतने में बाहर दरवाजे पर ठक-ठक की आवाज हुई। करीमा खाट पर उठकर बैठ गई। दीन मुहम्मद कोठी के घर के पास खड़े होकर आहट टटोलने लगा।

'कौन है?'

'मैं हूँ बद्राल्दीन।'

दीन मुहम्मद ने आँगन से होते हुए जाकर दरवाजा खोला। बद्राल्दीन को लेकर भीतर आया। करीमा खाट पर बैठी थी।

'पैसे सँभालकर तो रखे हैं न?' बद्राल्दीन ने डूबती आवाज में कहा।

करीमा ने तकिए में से पैसों की थैली निकालकर बद्राल्दीन को देते हुए

कहा–'भैया, अपने पास जाकर सँभालकर रखो।'

बद्राल्दीन ने जल्दी से पैसे लिए और रोशनी में जाकर उन्हें गिना। फिर हँसते हुए करीमा से कहा–'बहन माफ करना। बस आदत पड़ गई है इनको सीने से लगाकर सोने की। आज इनके सिवा नींद नहीं आ रही थी।'

करीमा ने बैठे-बैठे ही पति की ओर देखा। फिर मुस्कराते हुए कहा–'भाई, ये जड़ों से उखड़े जिसके पास हैं, उन्हें भी नींद नहीं है। जिसके पास नहीं है उन्हें भी नींद नहीं।

दर्द की पगडंडी

डॉ॰ हिदायत प्रेम

यह दुनिया बड़ी अजीब है। कहाँ–कहाँ के लोग आकर मिलते हैं, मिलकर बिछड़ जाते हैं। फिर कोई किसी को याद करता है तो कोई भुला देता है। मिलने, बिछड़ने और फिर मिलने की आस उम्मीद पर आदमी जी रहे हैं, जीते हैं और ज़िंदगी गुजारते हैं। कुछ आदमी तत्काल मिलते हैं, सिर्फ कुछ पलों के लिए फिर भी हमेशा यादों में बस जाते हैं। किनके साथ अरसा गुजारने के बावजूद याद रखना मुश्किल हो जाता है। ज़िंदगी में ऐसे कम आदमी मिलते हैं, जिनमें मानवता के मूल्य भरपूर होते हैं और वे खुद अनमोल मोती, उन्हें भुलाना नामुमकिन है।

सिंध की रवायती मेहमान–निवाजी पाकर कितने ही बाहर के मुल्कों के लोग यहाँ आते हैं और सम्मान पाकर लौटते हैं। विभाजन देश का हुआ है, दिलों का नहीं। यही प्रवृत्ति पालकर लोग अपने बच्चों को देश से विदेश पढ़ने के लिए, शोधकार्य के लिए भेजते रहे।

ऐसा ही एक जोड़ा, सारा और खजर इंग्लैंड से यहाँ आया हुआ था। वह लंदन यूनिवर्सिटी के एक रिसर्च प्रोजेक्ट की तहत आया हुआ था। सलीम ने यथारीति उनकी खूब खातिरदारी की थी। बहुत कम उम्मीद के बावजूद सलीम को दूसरे साल स्कॉलरशिप मिली और उसका दाखिला लंदन यूनिवर्सिटी में ही हो गया। लंदन यूनिवर्सिटी में 'कनॉट हॉल' में पहुँचते ही उसने सारा और खजर को 'विंडसर' में, जहाँ वे रहते थे, फोन किया। जाने क्यों सलीम को यह महसूस हुआ कि खजर के मुकाबले में सारा को ज्यादा खुशी हुई थी। एक अँग्रेज स्त्री सारा, जिसने पाकिस्तान के एक नौजवान खजर से शादी की थी, सिंध घूमकर गई थी। सिंधियों की उदारता से वाकिफ हो चुकी थी। सिंधियों की सादगी और सहृदयता से बहुत प्रभावित हुई थी। उसके भीतर शायद आतिथ्य–सत्कार का जज्बा पैदा हो गया था। फोन पर ही सलीम ने ऐसे ही मनोभावों की खुशबू महसूस

की। सारा और खजर को उसने बताया कि वह कनॉट हॉल में ठहरा हुआ है, क्योंकि उन्होंने लंदन आकर सलीम से मिलने की ख्वाहिश जाहिर की थी।

शुक्रवार के दिन विंडसर से खजर ने सलीम को फोन किया, 'यार सुनाओ खजर, पहला हफ्ता कैसे गुजरा?'

सलीम ने जवाब दिया–'अभी तो बेगानों की तरह घूम रहा हूँ। फकत यूनिवर्सिटी और ब्रिटिश म्यूजियम ही देख पाया हूँ।'

'ये तो बहुत कुछ हुआ। खैर, कल कहीं जाने का प्रोग्राम तो नहीं? वीक-एंड है।' खजर ने पूछा।

'नहीं, कोई प्रोग्राम तो नहीं है।' सलीम ने कहा।

'अच्छा तो फिर शाम को छः बजे के करीब तुम्हारे पास आएँगे। कनॉट हॉल वही है न जो न्यू स्टॉक इस्क्वैर पर है और बगीचे में गांधी का पुतला लगा हुआ है।'

'हाँ बिल्कुल वही हॉल है। आपका शायद देखा हुआ है।'

'हाँ, हाँ! मैंने देखा है। अच्छा कल मिलते हैं।' कहकर खजर ने बात समाप्त की।

कनॉट हॉल, जिसमें सौ शार्गिदों के रहने की गुंजाइश थी, उसकी तीसरी मंजिल पर सलीम को एक कमरा मिला था। पहले दिन कमरे में आया तो रात हो चुकी थी। थकावट के कारण जल्दी ही सो गया। सुबह जल्दी ही उसकी आँख खुली। पहले उसे सारा माहौल अजनबी लगा तो मन में सवाल उठा– 'सलीम, कहाँ आ गए हो?'

याद आते ही–'अरे पागल भूल गए, लंदन पहुँच गए हो।'

सलीम उठा, कमरे की बंद खिड़की पर से लाल रेशमी परदा हटाकर खिड़की खोली तो सामनेवाले बगीचे से ठंडी-ठंडी बयार ने उसका स्वागत किया। बाग में खड़े बड़े-बड़े मेपल के दरख्तों के पत्तों ने खड़खड़ करते हुए स्वागत में सुर मिलाया। फूल भी न जाने कितने रंगों के, अलग-अलग प्रकार के खिले थे। बगीचे के कोनों में प्रतिष्ठित जन के पुतले लगे हुए थे, पर एक पुतला बीच में भी लगा हुआ था, किसी आदमी का! पर उसकी ओर पीठ थी। पालथी मारे बैठे किसी शख्स का पुतला। सलीम ने सोचा–महात्मा बुद्ध का होगा। पर फिर उसे देखने की चाह मन में हलचल मचाती रही। सलीम ने जल्दी से स्नान किया, कपड़े बदले और नीचे बेसमेंट में बने डाइनिंग हॉल में जाने के लिए लिफ्ट में नीचे आया। लिफ्ट में उसने बेस्मेंट का बटन दबाने की बजाय ग्राउंड

फ्लोर का बटन दबाया और लिफ्ट हॉल के दरवाजे के सामने आकर रुकी। वह तुरंत बाहर निकलकर रोड क्रॉस करके बगीचे में पहुँचा। वहाँ बीच में पहुँचकर उसे हैरत हुई। वह पुतला गांधी का था, जिसके चरणों में कोई फूल रखकर गया था। काले रंग के धातु से बना गांधी, बाग के बीच में बैठा था। सलीम ने पुतले के चारों तरफ चक्कर लगाया। गांधीजी ने धोती पहनी थी, कुर्ता नहीं था। नीचे तख्ती के किनारे पुतला बनानेवाले कलाकार का नाम लिखा था–'फ्रेडा बैंजमिन!'

शनिवार के दिन शाम को सलीम अपने कमरे में सारा और खजर का इंतजार करता रहा। हॉल की ओर से पौने छ: से पौने सात तक रात का खाना खिलाया जाता था। सलीम ने सोचा–वह दोनों को खाने के लिए आग्रह करेगा। डिपार्टमेंटल स्टोर से फ्रूट जूस का डब्बा भी ले आया। अभी छ: भी नहीं बजे थे कि नीचे रिसेप्शन ने आगाह किया कि आपके मेहमान आ गए हैं। सलीम नीचे जाकर उनसे मिला। वे जब सिंध में आए थे, तब उसने कभी भी सारा से हाथ नहीं मिलाया था, आज सारा ने खुद हाथ बढ़ाकर उसके साथ मिलाया। कमरे की ओर जाते हुए सारा ने उससे पूछा–'यहाँ पहुँचने पर यहाँ के माहौल के बारे में तुम्हारे क्या विचार हैं?'

'साफ-सुथरा मुल्क देखकर आँखों को बहुत सुकून मिला। बहुत खुश हुआ हूँ। स्कूल के उस्ताद भी अच्छे हैं। हॉस्टल भी बिल्कुल ही पास में मिला है।' सलीम ने सरलता से अपने मन की बात सामने रखी।

खजर ने कहा, 'आपका स्कूल भी अच्छा है, लाइब्रेरी भी ढंग की है, आपके मुल्क में बतियाई भाषाओं और संस्कृति पर भी सर्वोत्तम पुस्तकें संगृहीत हैं।'

सलीम ने बात को बदलते हुए कहा, 'खाने का समय हो गया है, चलो चलकर खाना खाते हैं।'

'नहीं, हम तुम्हारे यहाँ खाना खाने नहीं आए हैं बल्कि तुम्हें खाने के लिए अपने साथ ले जाने आए हैं। कुछ वक्त रुककर चलते हैं, किसी इंडियन रेस्टॉरेंट में।' खजर ने अपनेपन के साथ कहा।

'अच्छा तो जूस पीते हैं!' कहते हुए सलीम ने प्लास्टिक के ग्लास में उन्हें जूस दी।

'हाँ, यहाँ किसी से मित्रता हुई है या नहीं?' खजर ने उससे पूछा।

'हाँ, यहाँ हॉस्टल में नासिर शाह साहब खैरपुर के हैं। दूसरा लाहौर का

रहवासी भी है। दोनों सरकार की ओर से यहाँ पढ़ने आए हैं। भले लोग हैं। दोस्ती हो गई है। एकांत का अहसास नहीं होता। एक सिख भी दोस्त बन गया है, मनप्रीत सिंह बादल–बिल्कुल बादल की तरह, ठंडी छाँव देता हुआ, मन को भाता हुआ।'

'स्कूल में पढ़ाई कैसी चल रही है?' अब सारा ने सवाल किया।

'सच पूछें तो पहले दिन वाले लेक्चर में तो कुछ समझ में नहीं आया, अब आना शुरू हुआ है। किताब भी पढ़ने के सुझाव दिए गए हैं। दो–तीन कक्षा के विद्यार्थी भी मदद करते हैं। हर कक्षा में अलग–अलग कक्षा की लड़कियाँ हैं। एक है 'जूली', वह अँग्रेज है। 'ओ डीयर' बार–बार कहती है। मुझसे बड़ा स्नेह है। दूसरी है हाँगकाँग की 'छोई यंग चेंग'। उसे तो अँग्रेजी भी अच्छी नहीं आती। उसे कहा गया है कि पहले अँग्रेजी भाषा सीख ले। एक इंडोनेशिया से आया है, 'मलियानो' बहुत ही भला मानुस है। अपने मुल्क में अँग्रेजी का लेक्चरार है। सिंगापुर से भी लिसानियत का कोर्स किया है। अच्छी–खासी जानकारी रखता है। मेरे साथ भी घुल–मिल गया है। पाँचवाँ है जापानी 'सातो', पूरा नाम 'यासू हैदी सातो' है। बहुत खामोश रहता है, पर है बहुत होशियार। वैसे हमारे कई जनरल लेक्चर भी होते हैं, जिसमें अनेक विद्यार्थी शामिल होते हैं, और पढ़ानेवाले भी सीनियर प्रोफेसर हैं। कोर्स बड़ी तेज रफ्तार से बढ़ाते हैं। होम वर्क का बोझ भी काफी ज्यादा है।

'तुम्हारे स्कूल में मैंने भी तीन बार खाना खाया है। खाना अच्छा है और सस्ता भी। मैं स्कूल में अक्सर आती हूँ और कॉफी शॉप में भी सैंडविच वगैरह अच्छे मिलते हैं। भूख कम होती है तो कॉफी शॉप में जाती हूँ, नहीं तो यहीं पर खाना खाती हूँ।' सारा ने बताया

खजर ने कहा–'हम तुम्हें दावत देने आए हैं। तुम किसी वीक एंड पर 'विंडसर' आओ, तो हम तुम्हें पूरी तरह घुमाएँ। महल भी है, विक्टोरिया वाटर्स भी है, और हाँ अपना वाला कॉलेज 'रॉयल कॉलेज आफ हॉलवे' भी दिखाऊँगा।'

'जरूर आऊँगा!' सलीम ने कहा–'पहले आपको सूचित करूँगा फिर चला आऊँगा।'

खजर ने हिदायती नमूने से कहा–'वाटर लू स्टेशन से विंडसर के लिए ट्रेन मिलेगी। स्टेशन पर हम तुम्हें लेने आएँगे।'

सलीम ने सोचा–किसी मौके पर विंडसर जरूर जाना है। उस दिन उन तीनों ने मिलकर टोटनहॉम कोर्ट रोड पर एक इंडियन रेस्टॉरेंट में खाना खाया,

उसके बाद वे अपनी कॉर से विंडसर की ओर रवाना हुए।

सलीम स्कूल की लाइब्रेरी के उस हिस्से में बैठा था, जहाँ लसानियत और कानून की किताबें रखी हुई थीं। माहौल बिल्कुल शांत था। उस तरफ लोगों का आना-जाना न के बराबर था। सलीम पढ़ने में इतना मग्न था कि उसे पता ही नहीं चला कि बड़े टेबिल के उस छोर पर कोई आकर बैठ गया है। आँखें किताब से हटाकर सलीम ने देखा तो सामने ही एक लड़की बैठी पुस्तक पढ़ रही थी। लड़की ने भी उसकी ओर देखा और फिर पढ़ने में व्यस्त हो गई। काफी देर की खामोशी के बाद सलीम ने लड़की से पूछा—'आप कहाँ से आई हैं?'

शायद सहजता से यह पूछ बैठा कि लड़की के नाक-नक्श एशियन से लगे, उसके बाल थोड़े छल्लेदार, रंग गोरा, कद ठीक-ठाक था। उसने पैंट शर्ट पहन रखी थी, ऊपर से स्वेटर।

'अभी तो ब्रितानियाँ के हैं, और यहीं की नागरिकता बहुत सालों से है।' उसने अँग्रेजों के अंदाज में बात की।

'यहाँ क्या पढ़ रही हो?'

'यहाँ कानून की डिग्री के लिए पढ़ रही हूँ। आप कहाँ से आए हैं और स्कूल ऑफ ओरियंटल एंड अफ्रीकन स्टडीज में क्या कर रहे हैं?'

'मैं पाकिस्तान से आया हूँ, लसानियत में डिग्री कोर्स करने। वहाँ मैं यूनिवर्सिटी टीचर हूँ। किस्मत ने यहाँ मुझे विद्यार्थी बनाकर भेजा है। मेरा नाम सलीम कुरैशी है...और आपका?'

'पायल।'

नाम सुनकर सलीम के कानों में घुँघरू बजने लगे, 'इतना सुंदर और प्यारा नाम किसने रखा है?'

'मम्मा ने नाम रखा है। वह मैनचेस्टर में एशियन डांस स्कूल चलाती हैं और कथक डांस में खास माहिर हैं।'

'फिर तो आप भी नाचती होंगी?'

'नहीं! मुझे मम्मा ने पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया है। शुरू में थोड़ा डांस किया था, पर उसे अपना कैरियर नहीं बनाया।'

सलीम और पायल बहुत धीमी आवाज में बातें कर रहे थे। वहाँ कोई तीसरा था भी नहीं, नहीं तो लाइब्रेरी में इतना भी बात नहीं कर सकते। पायल उठकर और पुस्तकें ले आई। टेबिल पर उन्हें रखते कहा—'दक्षिण एशिया में औरतों को अपने मजहबों ने, जैसे जीवन गुजारने की इजाजत दी है, पर प्रशासन

उन्हें उस हद तक आजादी देने की बात नहीं करता। आपका क्या विचार है? दरअसल, यह एक विषय मेरी असाइंमेंट का है, जिस पर मैं आजकल काम कर रही हूँ।'

'मर्द को प्राबल्य हासिल है। औरत जुल्म की चक्की में पिस जाती है तो भी उफ नहीं करती। अब कुछ औरतें जाग्रत हुई हैं। वे औरों को राह दिखा रही हैं, कानूनी तौर पर भी मदद कर रही हैं, खुद भी वे वकील हैं, इसलिए मिडिल क्लास में थोड़ा पढ़ी हुई औरतों में जागरूकता आई है। आप कभी वहाँ गई हैं?'

'नहीं, मैं कभी भी नहीं गई हूँ। पर मुझे वहाँ के औरत, मर्द और सारी सार्वजनिक जीवन की हालत की पूर्ण खबर है, तभी तो यह विषय लिया है।'

पायल की काली आँखें, काली भौंहें, दमकती पेशानी सलीम को घायल करने के लिए काफी थी। उसका चमकता हुआ चेहरा हृदय में बस गया था। लाइब्रेरी में धीरे से चलने का लुभावना अंदाज उसे बहुत भाया। पायल काम में व्यस्त थी, गालों पर बालों की गिरती लटें वह बार-बार अपने हाथ से हटाती रही।

सलीम रह रहकर उसे निहारता रहा और अपना काम भी करता रहा। लंच के समय दोनों उठे, बाहर निकलकर सलीम ने पायल को खाना साथ खाने की दावत दी। पायल ने माफी माँगते हुए कहा–'मैंने एक सहेली को समय दे रखा है, खाना भी उसके पास ही है।' ऐसा कहते पायल और सलीम फिर मिलने की उम्मीद का इजहार करते हुए अपनी-अपनी राह चले।

स्वास के कारीडोर्स, लाइब्रेरी, कॉफी शॉप या यूनिवर्सिटी ऑफ लंदन यूनियन और डिलंस बुक शॉप पर पायल और सलीम की मुख्तसिर 'हलो हाय' होती रही, एक-दूसरे की तरफ चाहत भरे ख्यालों की लेन-देन और आखिर में बाइ-बाइ गुड बाई कहते रहे।

उन दिनों पंकज उदास आए हुए थे और वेंबली एरीना में जाने के प्रोग्राम की सूचना मिली। संगीत के दीवानों में खुशी की लहर दौड़ गई। टिकटें कुछ महँगी जरूर थीं, पर अपने सिख दोस्त मनप्रीत सिंह बादल को कहकर उसने दो टिकटें खरीद लीं। सलीम ने पायल को लिख भेजा।

प्यारी पायल

पंकज उदास के संगीत का प्रोग्राम, 'वतन से चिट्ठी आई है' आगामी 28 तारीख को वेंबली एरीना में है। मैंने अपनी और तुम्हारी, दो टिकटें ले ली

हैं। मैं चाहता हूँ कि हम यह प्रोग्राम साथ में देखें।

उम्मीद है कि 28 के पहले इस चिट्ठी का जवाब जरूर दोगी।

तुम्हारा खैरख्वाह

सलीम

सलीम खत बंद करके कानून वाले विभाग के ताको में pidgen holes के च् वाले ताक में रख आया। हर विद्यार्थी विभाग के pidgen holes में अपनी डाक करीब हर रोज देखता था। सलीम को विश्वास था कि एक दो दिनों में चिट्ठी पायल को मिल जाएगी। वैसे ही जवाब लिखकर उसके विभागवाले ताक में रख जाएगी। काफी दिनों के बाद सलीम को पायल का जवाब मिला। उसने लिखा था :

'प्यारे सलीम,

तुम्हारी प्यार भरी ऑफर मुझे मिली। पर अफसोस कि 28 तारीख को मैं मैनचेस्टर जा रही हूँ, दो चार दिन मम्मा के पास रहूँगी, माफी चाहती हूँ।

स्नेह के साथ

पायल

खत पढ़ते ही सलीम को काफी दुख हुआ। पंकज का प्रोग्राम वह दोस्तों के साथ देख आया। पायल की बेरुखी को भुलाने की कोशिश करता रहा। एक दिन पायल उसे कॉफी शॉप में मिल गई। वह कॉफी पी रही थी। मुस्कराकर सलीम से मिली। सलीम अपने लिए चाय का कप ले आया। कॉफी शॉप में ज्यादा विद्यार्थी नहीं थे।

पायल ने बात शुरू की, 'पंकज उदास का प्रोग्राम कैसा रहा?'

'प्रोग्राम तो निहायत अच्छा था, लोग भी बहुत आए थे। वह गाना लोगों को बहुत भाया–'चिट्ठी आई वाला'। पर तुम नहीं चलीं, मैंने तुम्हें बहुत मिस किया।'

'सलीम, तुम और मैं ऐसी तहजीबों से वास्ता रखते हैं, जो आपस में मिल नहीं सकतीं।' पायल ने कहा।

'तो क्या हुआ, हम अच्छे दोस्त तो बन सकते हैं!'

'सलीम, यह मत भूल जाना कि मुझे हर तरह की आजादी हासिल है, पर न जाने क्यों तुम्हें दोस्त बनाते हुए, खौफ लगता है।'

सलीम ने जवाब में कहा–'पायल, मैं तो ऐसा नहीं हूँ, मैंने तुम्हारे लिए अपने दिल के दरवाजे खोल रखे हैं। तुम्हें ऐसी बेबुनियाद बातों पर सोचना नहीं

चाहिए।'

'यही तो इस जग की कड़वी हकीकतें हैं, जिनसे मुँह नहीं मोड़ा जा सकता।' पायल ने सफाई देते हुए कहा।

सलीम को मायूसी हुई। शायद वह इस तरह नहीं सोचता। उसके दिल में पायल के लिए जो उल्फत पैदा हुई थी, उसका दु:खद अंजाम वह आँखों से देख रहा था। उसे संशय ही नहीं बल्कि विश्वास हो गया कि वह पायल के दिल में स्थान नहीं बना पाएगा। ऐसी चाहत से और कुछ नहीं सिर्फ दर्द ही दर्द मिल सकता था। उसने ऐसे दर्द की पीड़ा को सहने का इरादा कर लिया।

कॉफी पीकर पायल किताबों का थैला कंधे पर लटकाते हुए कुर्सी से उठकर जाने लगी, यह कहते हुए, 'सलीम, मैं आनेवाले टर्म में 'स्वास' से यूनिवर्सिटी कॉलेज ऑफ लंदन जा रही हूँ। ओके बाइ, बाइ।'

सलीम इस बात की तह तक पहुँच चुका था कि अब पायल से रास्ते चलते भी मुलाकात नहीं हो पाएगी। यह किस्सा यहीं खत्म समझना चाहिए। सलीम ने कुर्सी से उठते कहा–'बाइ, बाई, गुड बाई!'

सलीम ने पायल की ओर एक स्नेह भरा हाथ बढ़ाया था, जिसका अंजाम वह बेदर्दी के साथ दे गई थी। इस बात का सलीम को जाने कितने दिन अरमान और अफसोस रहा। वह अपने दिल को तसल्ली देता रहा कि शायद उसके नसीब में वही दर्द लिखा था, जिसे बर्दाश्त करने के सिवा और कोई चारा न था।

गैरतमंद

शौकत हुसैन शोरो

सुबह का समय था। गाँव के लोग जो खेतों में गए हुए थे, वे यह कहते हुए भागते हुए आए कि बाढ़ आ रही है। हर एक आदम थोड़ा-सा सामान लेकर गाँव से निकलने की भागम-भागी में लग गया। आरिब और उसका छोटा भाई कासिम भी भागते हुए घर आए।

'जल्दी करो, कपड़े लत्ते, थोड़ा जरूरी सामान जो ले सको, लेकर निकलें। बाढ़ बस आई कि आई!'

कासिम की पत्नी जरीना पेट से थी। आठवाँ महीना चल रहा था। वह उठी और सामान समेटने लगी।

'सफूरान कहाँ है?' आरिब ने पूछा।

'कुछ देर पहले बाहर गई है।' जरीना ने जवाब दिया।

'उसे भी अभी बाहर जाना था। लोगों की भागम-भाग मची हुई है। ऐसी क्या जरूरत थी उसे बाहर जाने की...।' आरिब ने गुस्से से कहा।

'मैं देखकर आता हूँ!' कहकर कासिम जल्दी बाहर निकल गया। बाहर आकर आसपास नजर फिराई, पर वह कहीं नजर नहीं आई। वह घूमकर घर के पिछवाड़े की ओर गया। कुछ दूरी पर सफूरान रमजान के साथ बातें कर रही थी। उसे देखकर कासिम का पारा चढ़ गया। उसकी रमजान के साथ वैसे ही अनबन थी और अब जो उसे भाभी के साथ इतनी नजदीकी में बात करते देखा, तो वह आग-बबूला हो उठा। कासिम कुल्हाड़ी लेकर उनकी ओर दहाड़ा। रमजान ने उसे दूर से आते देखा, तो वह छू-मंतर हो गया। सफूरान पथरा-सी गई। कासिम ने एक पल की देर न की, 'तुम काली हो' कहते हुए कुल्हाड़ी का जोरदार वार उसकी गर्दन पर किया। वह धड़ाम से नीचे गिरी। कासिम उल्टे पाँव घर की ओर लौटा, एक बार भी पीछे मुड़कर नहीं देखा। खून से सनी कुल्हाड़ी लेकर घर पहुँचते ही अपने भाई आरिब के सामने रख दी। आरिब हक्का-बक्का रह गया।

'यह क्या कर आए?' आरिब की चीख निकल गई।

'भौजाई का कत्ल कर आया हूँ।' कासिम की आवाज के साथ साथ उसकी शक्ल में भी एक वहशियत थी। जरीना काँपने लगी, खून से रँगी कुल्हाड़ी देखकर उसका दिल मचलने लगा। आरिब का छः साल का बेटा और चार साल की बेटी, दोनों भयभीत होकर पिता और चाचा को देखने लगे।

'क्यों किया?' आरिब ने डूबती आवाज में पूछा।

'पिछवाड़े में रमजान के साथ उसे देखा!' कासिम ने कहा।

'ऐसा क्या देखा...?' आरिब ने फिर सवाल किया।

'दोनों एक-दूसरे के नजदीक खड़े थे। मुझे देखकर रमजान भाग गया और भौजाई...।' कासिम ने बात अधूरी छोड़ दी।

'फिर बिना किसी पूछताछ के तुम उसे मार आए।' आरिब की चीख निकल गई। 'वह मेरी औरत थी, मुझे बताते! तुम्हें क्या हक था उसे मारने का?' आरिब ने गुस्से से लाल-पीला होते हुए कहा।

बच्चे जो अब तक भय से थरथरा रहे थे, अब 'अम्मा अम्मा' कहकर रोने लगे थे।

कासिम ने आगे बढ़कर जमीन पर पड़ी कुल्हाड़ी उठाते हुए कहा, 'भाई मेरी गैरत जाग उठी। ठीक है, मैं थाने जाकर खुद को समर्पित करता हूँ।' वह जाने लगा। जरीना ने घबराकर कासिम की ओर फिर आरिब की ओर देखा।

'ठहरो!' आरिब ने चिल्लाते हुए कहा, 'कुल्हाड़ी मुझे दे दो।'

उसने आगे बढ़कर कासिम के हाथों से कुल्हाड़ी छीन ली और जोर से बहुत दूर फेंक दी।

'थाने जाने की कोई जरूरत नहीं है, चलो मेरे साथ।' आरिब ने गुस्से से कहा।

बाढ़ का पानी अब गाँव तक आ पहुँचा था। आरिब ने कंधों पर बेटे को बिठाया और बेटी को गोद में लिया।

'जल्दी करो, चलो नहीं तो डूब जाएँगे।' बढ़ता हुआ पानी अब उनकी कमर तक पहुँच गया था। उमड़ते पानी के बीच से रास्ता चीरते वे बाँध पर आकर पहुँचे। वहाँ लोगों की भीड़ जमा थी।

आस-पास के गाँव के लोग भी वहाँ जमा हुए थे। सभी अपनी-अपनी चिंता और परेशानी की चादर ओढ़े हुए थे।

आरिब के परिवारवालों ने वह रात बाँध पर गुजारी। दूसरे दिन उन्हें एक

ट्रैक्टर-ट्राली में सवारी मिल गई। बाढ़ से पीड़ित और लोगों के साथ वे 'सरवर' आ पहुँचे। कैंप में ऊधम मचा हुआ था। बच्चों और औरतों के साथ मर्दों की आवाजें भी थीं। आरिब बच्चों को अपने साथ सटाकर बैठ गया। जरीना भी सामान को सरकाकर वहाँ आकर बैठी। गाँव से निकलने के पश्चात् आरिब बिल्कुल चुप था।

'मैं देखकर आता हूँ, कहीं कोई रहने का ठिकाना मिल जाए।' कहते हुए कासिम लोगों के हुजूम में खो गया। रात बहुत देर गए वह वापस लौटा।

'नाम लिखवाकर आया हूँ। हमें एक तंबू भी मिला है। चलो चलते हैं।' कासिम जरीना के साथ सामान लेकर आगे बढ़ा। आरिब बच्चों को लेकर चुपचाप उनके पीछे जाने लगा। तंबू में आकर जरीना ने सामान सहेजकर रखा। वह अपने साथ कुछ बर्तन भी ले आई थी। कासिम उनमें से एक हाँडी लेकर बाहर चला गया। दिन-भर के भूखे-प्यासे बच्चे अब रोने लगे थे। कासिम दलिए से आधी भरी हाँडी लेकर भीतर आया।

'यहाँ खाना लेना नहीं पड़ता, भीख में माँगना पड़ता है।' कहते हुए उसने हाँडी नीचे रख दी। जरीना ने दो थालियों में दलिया परोसकर दोनों भाइयों के सामने रखा। आरिब बच्चों को खिलाने लगा। 'भैया बच्चों को मैं खिलाती हूँ, यह आप खा लो।' जरीना ने आरिब से कहा।

आरिब ने कोई जवाब नहीं दिया। जरीना ने कासिम की ओर देखा जैसे आँखों ही आँखों से शिकवा करते हुए कह रही हो, 'देखा कैसा कहर कर दिया तुमने!'

आरिब ने बच्चों को खिलाकर, उन्हें लिटाया और खुद भी लेट गया। नींद तो किसी को भी नहीं आ रही थी। जरीना ने सोने के लिए आँखें मूदीं, तो उसके आगे खून से सनी कुल्हाड़ी घूम गई। सफूरान थी तो उसकी जेठानी, पर वह उसकी सास बनकर उसे दुलारती और प्यार करती। जरीना अभी दस साल की ही थी कि उसकी माँ मर गई। उसके पिता की संगत चोर-डाकुओं के साथ थी। वह कभी जेल में होता, तो कभी बाहर। जरीना कभी नानी के पास तो कभी पराए दरों की ठोकर खाती रही। सात-आठ साल यूँ ही गुजर गए। उसके पिता एक दिन अपने बचपन के दोस्त आरिब के पास गए और जरीना को शादी के बंधन में बाँधने की बात की, ताकि वह इस जवाबदारी से मुक्त हो सके। आरिब को भी अपने छोटे भाई कासिम के लिए एक रिश्ते की तलाश थी। जरीना सुंदर भी थी और गुणवान भी। सफूरान ने उसे अपनी छोटी बहन की तरह समझा और

माना था। जरीना का दिल अचानक भर आया और उसकी सिसकी बँध गई। वह दुपट्टा मुँह में ठूँसकर रोने लगी। कासिम समझ गया कि वह रो रही है। वह खुद भी तो उसके बाजू में बुत बना लेटा रहा। उसका दिमाग बिल्कुल खाली व सुन्न था।

फिर न जाने कब उन दोनों की आँख लग गई। जब वे सुबह उठे, तो तंबू में न आरिब था, न बच्चे! उन्होंने सोचा शायद आरिब बच्चों को बाहर ले गया होगा। जब कुछ देर गुजरी, तो कासिम उन्हें ढूँढने के लिए बाहर निकला। उसने सारा कैंप छान मारा, पर आरिब व बच्चे कहीं भी नहीं मिले। आखिर भटकने के बाद वह अकेला ही तंबू में लौट आया। जरीना जो इंतजार में बैठी थी, कासिम को अकेला आते देखकर व्याकुल हो गई। 'क्या हुआ, भाई आरिब नहीं मिले?'

'नहीं, सारा कैंप घूम आया हूँ, पर वे कहीं भी नजर नहीं आए।' कासिम ने मायूसी-भरे लहजे में कहा।

जरीना हैरत-भरी निगाहों से कासिम की ओर देखती रही। 'आखिर वे कहाँ गए होंगे?' लगता है भैया बच्चों को लेकर किसी और जगह चले गए हैं।' कासिम ने कहा।

जरीना के हृदय को आघात पहुँचा। वह समझ गई कि आरिब उनसे जुदा होकर, बच्चों को लेकर कहीं निकल गए हैं।

'अब तो हम बिल्कुल अकेले हो गए हैं।' जरीना जैसे अपने-आपसे बतियाने लगी। कासिम ने भी कुछ नहीं कहा।

'अब हम खुद भी क्या करेंगे?' जरीना ने कुछ देर बाद कासिम की ओर देखते हुए कहा।

'क्या करेंगे।' अभी तो यहाँ कैंप में बैठे हैं।' उसने बगल की जेब में हाथ डालकर सिगरेट का पैकेट निकाला। सिर्फ एक सिगरेट बचा था। उसने पैकेट फेंककर, सिगरेट सुलगाया और कश लेने लगा।

'खाने का वक्त हो गया है। हाँडी दे दो तो देखता हूँ। खाना लेने के लिए भी लंबी कतार...'

जरीना ने चुपचाप हाँडी लाकर उसे दी। कासिम बाहर निकला। वह जब लौटा तो उसकी कमीज फटी हुई थी।

'खाना लेने के लिए तो तौबा...तौबा...एक तरफ पुलिसवालों की लाठियाँ, दूसरी तरफ लोगों की धक्का-धुक्की...' उसने गुस्से से कहा।

एक हफ्ता-भर गुजरा, तो कासिम बाहर से परेशानी वाली हालत में भीतर आया।

'कह रहे हैं कि कल से मुफ्त का खाना बंद है। हर एक अपना बंदोबस्त खुद करे।'

'फिर?' जरीना भी परेशान हो उठी।

'मेरे पास तो कुल मिलाकर तीन सौ रुपए होंगे। तुम्हारे पास कुछ पैसे हैं?' कासिम ने जरीना से पूछा।

जरीना चुपचाप उठी, एक गठरी में से पाँच सौ रुपए निकालकर कासिम को दिए।

'बस इतने!' कासिम ने उन पैसों की ओर देखते हुए कहा। 'इनमें से कितने दिन गुजारा होगा। ये खत्म हो गए तो फिर...?'

'जजकी में भी अब कुछ दिन ही बाकी हैं। उसके लिए भी चार पैसे पास हों, तो अच्छा होगा।' जरीना ने जैसे उसे याद दिलाते हुए कहा। कासिम खाना खाना भूल गया। वह परेशान हो उठा।

'भैया के पास कुछ पैसे थे, पर वे हमें अकेला छोड़कर चले गए।' कासिम ने शिकायती लहजे में कहा।

'किस मुँह से भैया पर इल्जाम लगा रहे हो!' जरीना ने पहली बार कासिम के मुँह पर सच कहने की हिमाकत की। कासिम ने नजरें उठाकर उसकी ओर देखा, जैसे कुछ कहना चाहता हो, पर चुप रहा।

रात को वे देर तक सोचते रहे, पर समस्या का कोई भी समाधान नजर नहीं आ रहा था।

'देखो शहर में अगर कोई नौकरी मिल जाए?' जरीना ने सलाह दी।

'यहाँ कैंप में हजारों लोग आए हैं, सभी भटक रहे हैं। क्या सिर्फ मुझे ही नौकरी मिलेगी?' कासिम ने चिड़ते हुए कहा।

जरीना ने चुप रहना बेहतर समझा। कुछ देर बाद वह सोने की कोशिश करने लगी। कासिम को अचानक मौसी भागल याद आ गई, जो हैदराबाद में रहती थी। मौसी का पति 'जानूँ' जाना-माना डकैत था। कई लोगों के साथ मिलकर उसने एक सूबेदार को भी मारा था, पर फिर वह उन डकैतों की टोली से जुदा हो गया। स्थापन के दिनों उसने मौसी भागल से शादी की और हैदराबाद में कासिमाबाद के इलाके में एक जगह ले ली। वहीं पर उसे एक बेटा भी पैदा हुआ। किसी जान-पहचान वाले ने उसे कासिमाबाद में देख लिया और जाकर

पुलिस में चुगली लगाई। एक रात पुलिस की टीम ने उसके घर पर धावा बोल दिया और उसे गिरफ्तार करके ले गए। मौसी भागल ने बहुत यत्न किए, कोर्ट में केस भी चला, वकील भी किए, पर जानूँ को फाँसी की सजा से कोई न बचा पाया। उन दिनों कभी आरिफ कभी कासिम माँ के साथ मिलकर कासिमाबाद जाते, उसकी मदद करते। जानूँ को फाँसी हुई तो वे मौसी के साथ जाकर जानूँ की लाश गाँव लिवाकर ले आए।

माँ के गुजर जाने के बाद मौसी के पास उनका आना-जाना कम हो गया था। अब तो बरसों बीत गए थे। उनका मौसी के साथ कोई रिश्ता ही न रहा। कासिम को यकीन था कि वह अगर मौसी के पास जाएगा, तो वह जरूर उसका लिहाज करेगी। कासिम ने सोचा, 'और कोई चारा भी नहीं, ये बचे-खुचे पैसे भी खत्म हो जाएँगे, तो कोई खैरात भी नहीं देगा।' उसे कोई और रास्ता नजर नहीं आया तो उसने मौसी के पास जाने का फैसला किया। इस फैसले से जैसे उसके मन से भारी बोझ उतर गया।

सुबह उठते ही उसने यह बात जरीना को बताई। नाश्ता करके, सामान साथ लेकर वे कैंप छोड़कर सरवर स्टेशन पर आए। कासिम ने हैदाराबाद की दो टिकटें लीं और वे गाड़ी में रवाना हुए।

'मेरे ख्याल में तो भैया आरिब भी भागल के पास गए होंगे।' कासिम ने अंदाजा लगाते हुए कहा।

'पता नहीं, वहाँ चलेंगे तो मालूम पड़ेगा।' जरीना ने जवाब दिया।

'तय है वहीं होगा, और कहाँ गया होगा।' कासिम ने खातिरी के साथ कहा।

कासिम और जरीना जब कासिमाबाद, मौसी भागल के घर पहुँचे, तब उनकी बहू नसरीन ने आकर दरवाजा खोला। कासिम ने इससे पहले उसे कभी नहीं देखा था।

'मौसी भागल घर में हैं?' कासिम ने पूछा।

'कौन मौसी भागल?' नसरीन ने हैरत से पूछा।

कासिम कशमकश में पड़ गया, 'यह घर मौसी भागल का है न?'

'नहीं, यह मौसी अमीना का घर है!' इतना कहकर नसरीन दरवाजा बंद करने ही वाली थी कि मौसी ने पास आकर पूछा, 'कौन है?'

उसकी नजर कासिम पर पड़ी, तो खुशी से चिल्ला उठी, 'कासिम 'तुम?'

वह कासिम और जरीना को अंदर ले आई।

'शाबास है बेटे! मौसी को तो बिल्कुल ही भुला बैठे। मैं टी॰वी॰ पर बाढ़ की खबरें देखकर चिंता में पड़ गई कि मेरे यतीम भांजों का न जाने क्या हाल हुआ होगा? अच्छा किया आ गए, पर आरिब और उसके बच्चे कहाँ हैं?' मौसी ने शिकायत के साथ हमदर्दी जताते हुए कहा।

'कैंप में तो साथ थे, फिर अचानक भैया हमें बताए बिना बच्चों को लेकर न जाने कहाँ चले गए। हमने समझा वे आपके पास आए होंगे...'

मौसी ने हैरानी से कासिम और जरीना की ओर देखते हुए कहा, 'यहाँ तो नहीं आया।'

'मौसी आप तो खुश हैं न?' कासिम ने बात का रुख बदलते हुए पूछा।

'बस बेटा! मालिक की मेहरबानी है, गुजर-बसर हो रहा है। जो जमा-पूँजी थी, वह तुम्हारे मौसा पर खर्च हो गई। फिर भी शुक्र है, यह घर बच गया। अपनी छत की छाँव है।'

घर काफी अच्छा था—तीन कमरे थे, आँगन और अलग रसोईघर। एक कमरे में सदीक, उसकी पत्नी और बच्चा रह रहा था। दूसरे कमरे में मौसी भागल, जो आजकल मौसी अमीना के नाम से जानी जाती थी। तीसरा कमरा छोटा था, जिसमें घर का सामान रखा हुआ था। मौसी ने उस कमरे में कासिम और जरीना को पनाह दे दी।

दूसरे दिन सुबह नाश्ता करते समय कासिम ने सदीक से कहा, 'भाई सदीक, तुम्हें अगर कोई नौकरी सूझे तो मुझे दिला देना। किसी-न-किसी रोजगार से लग जाऊँ, तो अच्छा होगा।'

सदीक हँसने लगा, 'नौकरियाँ इतनी आसानी से मिलतीं तो मैं क्यों बेरोजगार बैठा होता। मैट्रिक पास हूँ, पर चौकीदार की नौकरी भी नहीं मिलती।'

'बेटा, नौकरियाँ मिलनी मुश्किल हैं। कहीं अगर मजदूरी मिल जाए, तो और बात है।' मौसी अमीना ने कहा।

सदीक नाश्ता करके, तैयार होकर, घर के बाहर खड़ी नई मोटर साइकिल पर सवार होकर कहीं चला गया। कासिम ने सोचा कि उसे खुद ही कोशिश करके रोजगार ढूँढना पड़ेगा। इतना बड़ा शहर है, कहीं कोई मजदूरी तो जरूर मिल जाएगी।'

कासिम कई दिन भटकता रहा। आफिसों में, दुकानों में, होटलों में, जहाँ भी गया उसे दो टूक जवाब मिला। ऊपर से जरीना की जजकी के दिन भी पास

आने लगे।

मौसी ने जजकी का सारा भार खुद पर ले लिया। कहीं से दाई का इंतजाम किया। जरीना ने बेटे को जनम दिया। मुबारकबाद का आदान-प्रदान हुआ, खुशियाँ मनाई गईं।

एक दिन जरीना ने बच्चे को सुलाते हुए कहा, 'मौसी ने हम पर बहुत मेहरबानी की है। नहीं तो कौन किसी का इतना ख्याल रखता है और घर में बिठाकर खिलाता-पिलाता है, पर हम आखिर कब तक मौसी पर बोझ बने बैठे रहेंगे?' चिंता में डूबी जरीना ने कहा।

'फिर क्या करें?' कासिम बोल उठा, उसे खुद भी इस बात का अहसास था।

'तुम थोड़ा कुछ ही कमाकर ले आओ, तो हम भी सर उठाने जैसे हों।' जरीना ने कहा।

'तुम क्या समझती हो कि मैं कमाने से कतराता हूँ? पूरा महीना भटका हूँ, कहीं मजदूरी भी नहीं मिली। बाकी भीख माँगने का काम बचा है, कहो तो वह भी करके देखूँ।' कासिम ने चिढ़ते हुए कहा।

'आहिस्ता बोलो, मौसी सुन लेगी। मैंने कब कहा कि भीख माँगने का काम करो!' जरीना ने वापस चिढ़ते हुए कहा।

'तुम बात ही ऐसी करती हो! अपनी ओर से मैंने पूरी कोशिश की।' कासिम ने उसके कान के पास जाते हुए धीरे से कहा, 'मेरी बात तो सुनो...।'

जरीना ने सवाली नजरों से उसकी ओर देखा।

'ये हर रोज शाम ढले मौसी के घर न जाने कौनसी लड़कियाँ सजी हुई आ जाती हैं। ये हैं कौन? मौसी के घर में क्या करती हैं?'

'मुझे क्या पता कौन हैं? मैं भी तुम्हारी तरह देख रही हूँ!' जरीना ने जवाब दिया।

'रात होते ही मौसी के पास फोन आने शुरू हो जाते हैं। वह फोन पर धीरे से बात करती है और फिर लड़कियों को साथ लेकर निकल जाती है। यह क्या माजरा है?' कासिम ने हैरत जाहिर करते हुए कहा।

'यह उसकी मर्जी, तुम क्यों सिरदर्द मोल ले रहे हो। हमें पनाह दी है, तीन बार खाना देती है। हम पर उसका यह अहसान कम है कि तुम बैठे-बैठे मौसी की जासूसी कर रहे हो।' जरीना ने कासिम को हल्के से डाँटा।

'जासूसी नहीं कर रहा, सामने मंजर देख रहा हूँ, इसलिए पूछ लिया।'

'चलो अब ज्यादा दिमाग मत लड़ाओ, चुप करके सो जाओ।' जरीना ने उसकी ओर पीठ करते हुए कहा।

एक दिन रात के वक्त जरीना मौसी के पास बैठी थी कि एक फोन आया।

'हाँ रईस! मैं खुश हूँ, गाँव से कब लौटे?' मौसी ने पूछा और फिर बात सुनते ही हँसकर कहा, 'आते ही इतनी बेताबी! अच्छा देखती हूँ, अगर वह घर में है, तो लेकर आती हूँ।'

फिर मौसी ने किसी को फोन करके कहा, 'रईस ने बुलाया है, तुम तैयार हो जाओ, तो मैं रिक्शा में तुम्हें लेने आती हूँ।'

मौसी ने जरीना की ओर देखा, 'तुम चलोगी घूमने?'

'कहाँ मौसी...?' जरीना ने पूछा। वैसे भी वह कभी-कभी मौसी के साथ बाजार में घर के सौदे के लिए जाया करती थी।

'बस यूँ ही चलो चक्कर लगा आते हैं!' मौसी ने मुस्कराते हुए कहा।

'मेरा...बच्चा...!'

'नसरीन जो बैठी है।' मौसी ने नसरीन को बुलाकर जरीना के बच्चे की देखभाल करने की हिदायत दी। नसरीन ने मुस्कराकर जरीना की ओर देखा। वह शक्ल-सूरत में सादी थी, पर दिल की अच्छी थी। जरीना को वह बहुत चाहती थी। घर का तमाम भार नसरीन पर था, पर अब जरीना भी उसके काम में हाथ बँटाती थी। मौसी अमीना तो फकत हुकुम चलाया करती। वह थोड़ी-थोड़ी देर में पुकारकर नसरीन को चाय बनाने के लिए कहती। उसे चाय पीने व सिगरेट फूँकने के सिवा दूसरा कोई काम न था।

'तो फिर चलें?' मौसी ने जरीना से पूछा।

जरीना ने हामी भरी, तो मौसी ने उसकी ओर देखा और हँसते हुए कहा, 'इस हाल में बाहर चलोगी क्या? कपड़े तो ढंग के पहन लो।'

जरीना ने भीतर जाकर कपड़े बदले और बाल ठीक करके बाहर आई। मौसी ने चाहत भरी नजरों से उसकी ओर देखा और बाहर आकर हाथ के इशारे से एक रिक्शे को रोका। रिक्शेवाले से दो जगहों पर रुकने के पैसे तय करके जरीना के साथ भीतर बैठ गई। रिक्शा एक गली में किसी मकान के पास रुका। मौसी ने फोन से एक मिस्ड कॉल किया। तुरंत चादर में लिपटी लड़की बाहर आई और रिक्शे में बैठ गई। सिंधी मुस्लिम सोसाइटी में एक बँगले के बाहर आकर रिक्शा रुकी, तो मौसी ने उसका किराया चुकाया। आगे जाकर उसने घर

की कॉलबेल बजाई। तुरंत ही नौकर ने आकर गेट खोला। मौसी को देखते ही मुस्कराकर एक तरफ खड़ा हो गया। मौसी दोनों लड़कियों को लेकर बँगले में भीतर गई और ड्राइंगरूम में जाकर बैठ गई। जरीना को महसूस हुआ कि मौसी का वहाँ आना-जाना लगा रहता है। जरीना ने ज़िंदगी में पहली बार इतने बड़े बँगले को देखा था। वह बहुत खुश हुई। साथ आई लड़की ने अपनी चादर उतारकर पास ही सोफे पर रख दी। लड़की जवान थी और दिलकश भी। कुछ ही पलों में वह रईस भीतर आया और उसने मौसी की ओर मुस्कराकर पूछा, 'अमीना क्या हाल है? फिर उसने लड़की की और साथ बैठी जरीना की ओर देखा। उसकी आँखें जरीना पर ठहर गईं। जरीना को शर्म आने लगी, उसने अपनी आँखें नीची कर लीं।

'रईस यह मेरी भांजी है। बाढ़ की वजह से यह लोग गाँव से मेरे पास आए हैं।' मौसी ने जरीना का परिचय कराते हुए कहा, और फिर दूसरी लड़की की ओर देखते हुए कहा, 'तुम्हारी फरमाइश पर शमाइला को लेकर आई हूँ।'

रईस ने मुस्कराते हुए शमाइला की ओर देखा, 'कैसी हो?'

'जी ठीक हूँ।' शमाइला ने मुस्कराकर जवाब दिया।

रईस कुछ सोचते हुए उठा और मौसी की ओर देखते हुए कहा, 'अमीना यहाँ आओ तो...।' मौसी उठकर उसके पीछे दूसरे कमरे में गई। रईस बिस्तर पर बैठा और उसने मौसी को अपने साथ बिठाया। वह मौसी के कंधे पर अपनी बाँह रखकर उसे देखने लगा।

'क्या देख रहे हो रईस?' मौसी हँसने लगी, 'मैं तो अब बूढ़ी हो गई हूँ।'

'मैं भी कौनसा जवान हूँ, अमीना? साठ साल का हो गया हूँ।'

'नहीं रईस, मर्द और घोड़ा दोनों कभी बूढ़े नहीं होते।' मौसी की बात सुनकर रईस ने ठहाका लगाया।

'तुम्हारी यही बातें तो मुझे भली लगती हैं।' रईस ने हँसते हुए कहा। पल-भर रुककर फिर कहा, 'अमीना जवानी में तुम भी कहर ढाती थीं, पर तुम्हारी भांजी भी गजब की है। मैं तो उस पर फिदा हो गया हूँ।'

मौसी ने रईस की बाँह अपने कंधे से हटाते हुए कहा, 'नहीं रईस! जरीना मेरे भांजे की बीबी है, मेरे पास मेहमान बनकर आई है। यह बात शोभा नहीं देती। तुम इस बात को जहन से निकाल दो। मैं तुम्हें जरीना से ज्यादा सुंदर लड़की ढूँढ़कर दूँगी।'

'नहीं!' रईस ने नकारात्मक ढंग से गर्दन हिलाते हुए कहा, 'मुझे तो वह

भा गई है। चाहिए, तो बस यही चाहिए।' उसने जिद करने की कोशिश की।

'रईस, मेरी बात सुनो और समझो, मैं तो इसे यूँ ही घुमाने ले आई थी। मुझे क्या पता कि इसे देखते ही अपने होश खो बैठोगे!' मौसी ने हँसते हुए उसे समझाने की कोशिश की।

रईस ने मौसी के सामने दोनों हाथ जोड़ दिए, 'देखो अमीना, तुम कुछ भी करो, पर यह काम कर दो।'

मौसी ने तुरंत उठकर रईस के हाथों को अपने हाथों में थामा, 'यह क्या कर रहे हो रईस! अच्छा, कुछ दिन सब्र करो, तो मैं कोई हल निकालने की कोशिश करती हूँ।'

रईस ने मौसी को आगोश में लेकर उसका गाल चूम लिया, 'बस अब सब तुम्हारे हाथ में है। कुछ करना, वर्ना मैं मर जाऊँगा।'

'अच्छा, अच्छा अब ज्यादा अदाकारी दिखाने की जरूरत नहीं है। मैं तुम्हें जानती हूँ।' मौसी ने उसे टोकते हुए कहा।

रईस ने बटुए से हजार-हजार के दो नोट निकालकर मौसी को दिए।

'यह एक हजार तुम्हारा और एक हजार जरीना का।' उसने फिर तीसरा नोट निकालते हुए कहा, 'यह शमाइला को दे देना और उसे अपने साथ लेते हुए जाना अभी मेरा मन नहीं है।'

'नहीं रईस, यह बात ठीक नहीं! तुम्हारे कहने पर ही उसे ले आई हूँ। अब कैसे कहूँ कि वापस चलो?' मौसी ने ऐतराज करते हुए कहा।

'अच्छा ठीक है! आई है, तो उससे दिल बहला लेता हूँ। वर्ना तुम भी बुरा मान जाओगी...' रईस ने मौसी की बात मानते हुए कहा।

दोनों ड्राइंगरूम में लौटे, तो मौसी ने जरीना को चलने के लिए कहा।

'ठहरो तुम्हें मेरी गाड़ी छोड़कर आती है।' मौसी के मना करने के बावजूद वे दोनों रईस की गाड़ी में सवार होकर रवाना हुईं। घर से कुछ दूरी पर दोनों कार से उतरकर घर आईं। जरीना अपने कमरे में गई, तो देखा कि बच्चा सो रहा था। कासिम अभी तक नहीं लौटा था। इतने में मौसी उसके कमरे में आई।

'अरी पगली! रईस तुझे देखकर पागल हो गया है।' मौसी ने उसके पास बैठते हुए कहा।

'मौसी, तुम मुझे गैरमर्द के पास क्यों लेकर चलीं?' जरीना ने शिकायत-भरे लहजे में कहा।

'इसलिए ले चली कि तुम थोड़ा घूम-फिर आओ। मुझे क्या पता था कि वह तुझ पर लट्टू हो जाएगा।' मौसी ने हजार का नोट उसकी ओर बढ़ाते कहा, 'ये लो रईस ने तुझे खुशी से बख्शीश दी है।'

जरीना हैरानी से उस नोट को देखती रही।

'नहीं, मौसी नहीं! कासिम पूछेगा कि पैसे कहाँ से लाई, तो क्या जवाब दूँगी। तुम्हें पता नहीं कासिम कितना खड़ूस है...।' फिर उसने सफूरान के कत्ल की सारी वारदात मौसी को बता दी।

मौसी के तो जैसे होश उड़ गए, 'यह जालिम तो खूनी है। मैं भी सोचूँ कि आरिब छोटे भाई को छोड़कर कैसे चला गया होगा? अच्छा, तो यह बात है...।' उसने हजार का नोट अपने पास रखते हुए कहा, 'हाँ सच में वह पैसे देखकर शक करेगा। तुम्हारे पैसे मैं अपने पास अमानत के तौर रखती हूँ।'

'मौसी वैसे भी तुम्हारा ही तो खा रहे हैं...।' जरीना ने शुक्रगुजारी की रस्म निभाते हुए कहा।

'नहीं पगली नहीं! हर एक अपने नसीब का खाता है...।' मौसी ने हँसते हुए कहा। 'तुम्हें पता है घर का इतना खर्च किस तरह चलता है। सदीक बाल-बच्चों वाला हो गया है, पर घर की जिम्मेदारी बिल्कुल पूरी नहीं कर पाता। माँ जो कमा रही है। पिता के पैसे सब मुकदमों में खर्च हो गए। खुद तो फाँसी पर चढ़ गया, पीछे रह गई मैं। सदीक तब बच्चा था। मेरे पास अपनी जवानी के सिवा कुछ न था।'

मौसी ने गहरी साँस लेते हुए कहा, 'तुम्हें क्या पता, अकेली औरत जात होकर मैंने किस तरह गुजारा किया। पापी पेट को टुकड़ा तो चाहिए न...।' मौसी का गला भर आया। वह रोने लगी।

'मैंने यह काम खुशी से नहीं किया। मुझे अपना और अपने बच्चे का पेट पालना था। बस, इस दलदल में उतरी तो फिर बाहर न आ पाई...।'

मौसी को रोता देखकर, जरीना का दिल भर आया।

'दुनिया बड़ी जालिम है जरीना। किसी-न-किसी ढंग से उससे जूझना तो है ही।' मौसी ने दुपट्टे से आँसू पोछते हुए कहा।

जरीना मौसी की बातें सुनकर दंग रह गई।

एक रात कासिम ने यूँ ही बात निकाली, 'अब मुझे मौसी के पास रहना अच्छा नहीं लगता।'

'क्यों? क्या हुआ?' जरीना ने हैरानी से पूछा।

'मुझे मौसी के आसार अच्छे नहीं लगते।' कासिम ने कहा।

जरीना सकते में आ गई, 'तुमने ऐसे कैसे सोच लिया?' उसने धीमी आवाज में कहा।

'सदीक सारा दिन मोटर साइकिल पर घूमता रहता है। कोई काम भी नहीं करता, तो फिर घर में इतना पैसा कहाँ से आता है? मौसी कोई अच्छा काम नहीं कर रही है, इतना तो मैं भी समझ गया हूँ।' उसने गर्दन हिलाते हुए कहा।

'पता नहीं।' जरीना ने नर्म लहजे में कहा, 'फिर तुम्हारी क्या मर्जी है?'

'कोई चारा हो तो यहाँ से निकल चलें।' कासिम ने कहा।

'मर्द आदमी हो, कोई रास्ता ढूँढ निकालो।'

'सुबह से शाम तक रोजगार के पीछे भागता फिरता हूँ। बस दुआ कर!' कासिम ने बेबसी की छटपटाहट से जूझते कहा।

'खुदा करे अपने रोजगार का कोई रास्ता निकल आए।' जरीना ने कहा।

शायद जरीना की दुआ कबूल हुई, कासिम को एक होटल में काम मिल गया, पर वह काम उसके लिए नया भी था और कठिन भी। एक तो उसके शरीर में फुर्तीलापन नहीं था, दूसरे कभी उसके हाथ से प्लेट गिर जाती, तो कभी गिलास टूट जाता। ग्राहकों की बातें सुननी पड़तीं और साथ में होटल के मालिक की सख्ती सहनी पड़ती। वह एक हफ्ता भी नहीं टिक पाया। आखिर होटल के मालिक ने उसे नौकरी से निकाल दिया। जरीना ने सुना, तो उसने दोनों हाथों से अपना माथा पीट लिया।

'तुमसे यह काम भी नहीं हो पाया, तो दूसरा कौनसा काम करोगे?' उसने गुस्से से कहा।

'लोगों की बातें सुनकर, सख्ती सहकर भी काम कर रहा था। होटल मालिक ने खुद जवाब दिया। इसमें मेरा क्या दोष?' कासिम ने कहा।

'आखिर तुम क्या करोगे? अगर तुमसे कुछ नहीं होता, तो फिर मुझे रिहा करो, तो मैं मौसी के साथ बाहर निकलूँ...।' जरीना ने चिढ़ते हुए कहा। कासिम ने झपटकर उसे गर्दन से पकड़ लिया।

'फिर अगर ऐसी बात की है, तो तेरे टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा...।' गुस्से से उसकी मुट्ठियाँ बँध गईं।

'भड़वों के साथ रहकर तुम भी उन जैसी हो गई हो।' उसने जरीना की गर्दन पकड़ते हुए उसे धक्का मारा। जरीना कमरे की दीवार से टकराकर नीचे गिर पड़ी। कासिम तेजी से बाहर निकल गया। शोर सुनकर मौसी कमरे में आई।

उसने जरीना को गले लगाकर उसे जमीन से उठाया। जरीना मौसी से लिपटकर रोने लगी।

'हम भड़वे हैं और खुद गैरतमंद है, तो यहाँ क्यों बैठा है?' मौसी बहुत गुस्से में थी। 'मुझे तुम्हारा और छोटे बच्चे का खयाल न होता, तो अभी का अभी कासिम को घर से बाहर निकाल फेंकती। खुद को समझता क्या है?'

उसने अपने दुपट्टे से जरीना के आँसू पोंछे। फिर पानी का ग्लास भरकर उसे पिलाया, 'यह पानी पी ले, ये मर्द सब होते हैं कुत्ते! झूठे, मक्कार, गैरतमंद! इनका बस चले, तो औरत का मांस तो मांस, उनकी हड्डियाँ भी चबा डालें...।' मौसी ने गुस्से-भरे उबाल से कहा।

रात को कासिम देर से घर आया। जरीना ने चुपचाप खाना लाकर उसके सामने रखा और खुद बच्चे के पास लेट गई। खाना खाकर कुछ वक्त कासिम चुप बैठा रहा। वह चाहता था कि जरीना से बात करे। उसने जरीना की बाँह पर हाथ रखा, पर जरीना ने उसका हाथ परे झटक दिया। अब कासिम जमीन पर बिछे अपने बिस्तर पर जाकर लेट गया।

मौसी और जरीना जबसे रईस के पास से लौटी थीं, शाम होते ही वह रोज मौसी को दो-तीन बार फोन करता।

'क्या हुआ? मेरी रातों का सुख-चैन सब खो गया है। कब परिंदे को लेकर आ रही हो?'

'रईस, जरीना कोई गुलाब नहीं, जो खुशबू के साथ तुम्हारे पास ले आऊँ, पर तुम्हारे कारण मैं भरपूर कोशिश करूँगी।' मौसी रईस की उम्मीद बँधाती और अपनी जान छुड़वा लेती। जब रईस की बेसब्री हद से ज्यादा बढ़ी, तो मौसी ने उससे फोन पर पूछा, 'अच्छा यह तो बताओ, जरीना को किसी तरह ले भी आई तो दोगे क्या?'

'जो तुम कहोगी।' रईस ने तुरंत जवाब दिया।

'जरीना तुम्हारे पास महीने में चार बार आएगी। तुम उसके चालीस हजार महीने के बाँध दो...।' मौसी ने अपना पासा फेंका।

'ये लो अमीना, तुम तो पहाड़ की चोटी पर चढ़ गईं।' रईस की जैसे चीख निकल गई।

'अगर रईसों के अदब-आदाब अपनाने हैं, तो खर्चा तो करना पड़ेगा।'

'मैं हर महीने तीस हजार रुपए दूँगा, पर एक शर्त पर...।'

'कैसी शर्त?' मौसी ने पूछा।

'वह मेरे सिवा किसी और के पास नहीं जाएगी।' रईस ने शर्त सामने रखी।

'वाह साँई, वाह! तीस हजार देकर परिंदे को पिंजरे में बंद करके रखोगे। अगर ऐसा शौक है, तो लाख रुपए महीने का दो, नहीं तो ऐसी पाबंदी कबूल नहीं।' मौसी ने रूखा-सा जवाब दिया।

'ऐसी जोर-जबरदस्ती मत करो अमीना! तुम्हें पता है मेरे और भी कई खर्च हैं।'

'तो फिर ऐसी शर्त भी मत रखो।'

'चलो फिर मैंने शर्त को रद्द कर दिया। अब तो मान जाओ...।' रईस जैसे बेबस हो गया था।

'ठीक है रईस, देखती हूँ। मैं क्या कर सकती हूँ।' मौसी ने कोई भी वादा न करते हुए कहा।

'हाय! अब भी देखोगी? तब तक मैं मर जाऊँगा।' रईस ने जैसे बेहताशा होकर चिल्लाते हुए कहा।

'ये वाक्यांश किसी और को सुनाओ, मरता-वरता कोई नहीं।' मौसी ने हँसते हुए कहा, 'जरीना को हासिल करना इतना आसान नहीं। मुझे थोड़ा वक्त दो अपने घर को तो बाँध लूँ।'

'बस अमीना, अब तुम्हारी मर्जी! हम तो अब तेरे बस में हैं।' रईस ने ठंडी आह भरते हुए फोन बंद कर दिया।

'मौसी तुमने यह क्या किया?' जरीना के चेहरे पर डर और परेशानी के बादल उमड़ आए।

'पगली! रईस के साये में तुम बस जाओगी।' मौसी ने उसे समझाते हुए कहा।

'नहीं मौसी नहीं..., डर से मेरा हृदय काँप रहा है। कासिम को तो तुम जानती हो।' इतना कहकर जरीना हकीकत में काँपने लगी थी।

'इतना डरने की बात नहीं। मैं भी इस बात को समझती हूँ। बात बनी तो बनी, नहीं बनी, तो खैर है। मैंने तो ऐसे ही रईस से जानना चाहा कि वह देगा क्या?'

मौसी ने जरीना को दिलासा बँधाया!

कुछ दिनों तक कासिम से न जरीना ने बात की, और न ही मौसी उसके मुँह लगी। कासिम को मौसी की ओर से अधिक चिंता थी। अगर मौसी ने घर

से निकाला, तो कहाँ जाएँगे? इस खयाल से वह और अधिक भयभीत हो जाता। अब गाँव में भी उसके लिए कुछ न बचा था। एक बड़ा भाई था, उसने भी उससे नाता तोड़ दिया था। कैंपों में खैरात पर आखिर आदमी कब तक पड़ा रहेगा। एक दिन उसने जरीना को बात करते हुए मिन्नत की, 'अब गुस्से को थूक भी दो, क्या सारी उम्र बात नहीं करोगी?'

'क्या बात करूँ? बात करती हूँ, तो गला दबा देते हो...।' जरीना ने अपनी नाराजगी जाहिर करते हुए कहा।

'तुमने बात ही ऐसी की। क्या गुस्सा नहीं आएगा?'

'यानि, तुम्हें मेरा बात करना पसंद नहीं है? तो फिर बात न करूँ तो ही ठीक है।'

'घर में दो बर्तन होंगे, तो जरूर टकराएँगे। इसमें बड़ी बात कौनसी है?'

'बड़ा आया है बर्तन...।' जरीना की हँसी छूट गई।

'गनीमत है, तुम हँसी तो सही।'

'मेरी तो खैर है, पर मौसी बहुत गुस्से में है।' जरीना ने कासिम के अंदर खौफ को फूँक दिया।

'हाँ, मैं भी देख रहा हूँ, वह घास ही नहीं डाल रही। तुम उससे बात करो, तो शायद उसकी नाराजगी कम हो।'

'मौसी तुम्हारी है और कहा मेरा मानेगी?'

'हाँ... पर...।' कुछ कहते-कहते कासिम चुप हो गया।

दूसरे दिन शाम को मौसी के घर दो लड़कियाँ आईं। रात होते ही मौसी के पास फोन आने लगे। मौसी दोनों लड़कियों को लेकर घर से निकली। गली से निकलकर रोड पर आई, तो एक कार उनका इंतजार कर रही थी। कार ने उन्हें लेकर एक बँगले के सामने छोड़ा। अंदर साहब अपने एक दोस्त के साथ बैठा था। उनके सामने व्हिस्की के भरे गिलास रखे थे। मौसी और लड़कियों को देखकर दोनों ने मिला-जुला नारा लगाया–'मौसी जिंदाबाद।' मौसी ने लड़कियों को छोड़कर लौटना चाहा, पर साहब और उसके दोस्त ने मौसी को अपने साथ बिठाया और व्हिस्की का एक गिलास मौसी को पेश किया।

'चीयर्स' कहकर उन्होंने अपने गिलास मौसी के गिलास से टकराए। मौसी भी दो पेग पीकर, मदहोशी में अपने घर लौटी। उस वक्त तक जरीना व कासिम जाग रहे थे। मौसी ने जरीना को अपने कमरे में बुलवाया।

'कर खबर? तुम्हारा मर्द रास्ते पर आया है या नहीं?' मौसी ने जरीना से

पूछा।

'थोड़ा बहुत...। कहता है मौसी को मनवाओ।' जरीना ने हँसते हुए कहा।

'अच्छा, जाओ उसे ले आओ।' मौसी जैसे आलीशान मूड में थी।

कुछ देर में जरीना लौट आई और उसके पीछे सहमा-सहमा सा कासिम भी भीतर आया।

'बैठो मिया कासिम खान।' मौसी ने तंज-भरे लहजे में कहा, 'दबंग जान हो।'

'नहीं मौसी, तुम्हारा बच्चा हूँ।' बैठते हुए कासिम ने नर्मी से कहा।

'मेरी स्वर्गवासी बहन के बेटे हो, इसीलिए मैंने भी तुम्हें अपना खून समझकर घर में रखा। बाकी तुम मुझे अगर बुरा समझते हो, तो दरवाजा खुला पड़ा है। जाना चाहो, तो खुशी से जा सकते हो।' मौसी ने उस पर सीधा वार किया।

'नहीं मौसी, तुम भी मेरी माँ समान हो। तुम्हें बुरा क्यों समझूँगा। तुम्हारे सिवा हमारा है ही कौन?' कासिम की आवाज में पशेमानी थी। मौसी ने पर्स में से पाँच सौ वाले चार नोट निकालकर आगे रखे।

'मेरी इस कमाई पर सारा परिवार चलता है। कुछ छिपा नहीं रही। मेरा धंधा तेरे सामने है।' उसने पाँच सौ का एक नोट कासिम की ओर बढ़ाते कहा, 'हाँ, ये मेरी ओर से जेबखरची है।'

'नहीं, नहीं, मौसी, तुम्हारा दिया खा रहे हैं, मेरे लिए इतना ही काफी है।' कासिम ने पैसे लेने से इंकार करते हुए कहा।

'अब ले भी लो, मौसी का दिया हुआ लौटा रहे हो।' जरीना ने जोर दिया।

कासिम ने जैसे लाचारी के तहत नोट लेकर जेब में डाला।

'कासिम, अब मेरी बात ठंडे दिमाग से सुनो। कोई जोर जबरदस्ती नहीं है। अपनी मर्जी वाले हो। अगर तुम्हें यह बात अच्छी न लगे, तो जहाँ चाहो अपना रास्ता पकड़कर चले जाना।' मौसी ने गौर से कासिम की ओर देखा। कासिम बिल्कुल चुप था।

'क्या कहते हो? बात चलाऊँ?' मौसी ने कहा।

'जी मौसी!' कासिम के गले से घुटी-घुटी-सी आवाज निकली।

'तुम्हारी पत्नी और बच्चे का खर्च मुझ पर है। तुम उनसे आजाद हो। तुम्हें हर महीने पाँच हजार जेब खर्च मिलेगा। बस! जरीना की बाँह मेरे हवाले कर दो।'

कासिम के दिमाग की नसें तन गईं और उसका जिस्म पथरा गया। मौसी

ने देखा कि उसकी आँखें लाल हो गई थीं।

'तुम भले अभी जवाब मत दो। एक-दो दिन ठंडे दिमाग से सोच-विचार करो। फिर जो तुम्हारी मर्जी।' मौसी ने उनींदी आँखों से उनकी ओर देखते हुए कहा, 'अब जाकर सो जाओ।'

कासिम अपने पथराए शरीर को ढोकर बाहर निकल गया। मौसी ने मुस्कराकर जरीना को आँख मारी और उसे कासिम के पीछे जाने को कहा।

कासिम जाते ही अपने बिस्तरे पर ढेर हो गया। उस रात दोनों ने एक-दूसरे से एक शब्द भी नहीं कहा और न ही दो-तीन दिनों तक मौसी वाली बात छेड़ी।

दो-तीन दिन गुजर गए। कासिम दोपहर का खाना खाकर बाहर जाने लगा, तो जरीना ने उससे कहा, 'सुनो आज शाम जल्दी घर आना, काम है।'

'क्या काम है?' कासिम ने हैरत से पूछा।

'तुम आओ फिर बताऊँगी।'

कासिम कुछ समझ नहीं पाया। बेचैन मन में न जाने कितने सवालों ने उसका बाहर रहना मुहाल कर दिया। शाम होते ही घर लौट आया। जरीना कमरे में नहीं थी। वह बैठ गया। कुछ देर के बाद जरीना कमरे में भीतर आई, तो कासिम उसे देखकर दंग रह गया। उसने इतनी सजी-धजी जरीना कभी नहीं देखी थी। पहली बार जरीना उसे इतनी सुंदर लगी।

'अब कहो, इजाजत दो तो मौसी के साथ जाऊँ?' कासिम का तन एक बार फिर पथरा-सा गया।

एक क्षण के लिए रुककर जरीना ने कहा, 'क्या कहते हो, तुम्हारी मर्जी नहीं है, तो मैं नहीं जाती।' जरीना उसकी ओर देखती रही और कासिम की गर्दन झुक गई। कुछ देर के बाद उसने जरीना की ओर देखे बिना फुसफुसाहट के लहजे में कहा, 'चली जाओ...!'

जरीना ने गर्दन मोड़ ली। एक तंज-भरी मुस्कराहट को होंठों पर सजाए वह कमरे से बाहर निकल गई।

किस-किसको खामोश करोगे?

नसीम थेबो

पाँचवाँ पीरियड खत्म हुआ तो मैं अपने क्लास की लड़कियों के साथ नीचे उतरी, क्योंकि अब हमारा जीवविज्ञान का प्रयोगात्मक सत्र था। मेरे हाथ में डिसेक्शन बॉक्स और जीवविज्ञान का जर्नल था। गलियारे से गुजरते, मेरी नजर एक कैदी पर पड़ी, जो लॉन की दूसरी ओर गर्दन झुकाए पत्थरों को कूटकर मिट्टी में बदल रहा था। उसके करीब और भी कैदी खड़े थे। उनके भी पाँवों में जंजीरें पड़ी थीं।

हम सबको गुजरते देखकर कैदियों ने मुँह ऊपर करके देखा। उनके होंठों पर घायल मुस्कान थी और आँखों में उदासी के साथ विडंबना भी थी। वे फिर अपने काम में लग गए और मैं भी प्रयोगशाला में आ गई। मेरा दिल न जाने क्यों उदास और वीरान हो गया। सोच रही थी कि मजदूर जेल में भी सख्त थकाने वाला काम करते हैं। पर बड़े आदमी कत्ल करके भी जेल में आकर बी-क्लास, रेडियो, अखबार और दूसरी सुविधाओं का उपयोग करते हैं। उन्हें जिंदगी की वही सुविधाएँ उपलब्ध करवाई जाती हैं, जिनके वे आदी हैं। मतलब वर्गीकरण के फासले जेल के भीतर भी कायम हैं।

हाँ, तो मैं बात कर रही थी उस कैदी की, जो मुझे कुछ जाना-पहचाना-सा लगा। थोड़ा जह्न पर जोर दिया तो याद आया, वह तो हमारे अपने गाँव का किसान था, जिसे गाँव के लोग कॉमरेड सोढा करके बुलाया करते थे।

पर वह जेल में कैसे आया, सोढा तो बहुत नेक किस्म का इंसान था। बुद्धिमान और इंसानियत से संपन्न! शायद मैंने सोढे को न पहचाना हो। काफी साल गुजर गए हैं, मुझे भी अपना गाँव छोड़े।

कॉलेज से जब घर लौट रही थी तो मैंने सोढे को गेट के बाहर सिपाहियों के साथ जेल की ओर जाते देखा।

ग्रीष्म ऋतु का अत्यंत ही तपता हुआ दिन था। सूरज की ऊष्मा जिस्म

को जला रही थी। नेक मोहम्मद के लबों पर एक पाखंडी मुस्कराहट थी। वह रह-रहकर अपनी मूँछों को मरोड़ रहा था। जब रामू ने उसे सब-कुछ बताते हुए कहा कि सोढे ने न तो 'ची' कहा और न 'चा!'

'पीरल साईं, कुछ दिमाग ठंडा कीजिए। तुम्हें क्या हक है किसी गरीब को बेइज्जत करने का। पर साईं याद रखना, आज तुम हम श्रमिकों को बिना किसी दोष के मार रहे हो। कल इन जैसे, जलील बुजुर्गों की गर्दनें काटेंगे।'

'अरे...सोढा, तुम्हारी ये मजाल।' फिर नेक मोहम्मद की ओर देखते हुए कहा–'नेक मोहम्मद देख रहे हो, उतारो कमीने की पगड़ी।'

'वहीं रुको। आगे मत आना। यह कुल्हाड़ी तुम्हारे खून से लाल कर दूँगा।' सोढे ने कुल्हाड़ी को सीधा करते हुए कहा।

'ये हमारे हाथ तुम्हें और नेक मोहम्मद जैसे चापलूस को तख्ते पर लटका देंगे, ये मत भूलना।' कहते हुए सोढा वहाँ से चला गया।

इस वारदात को हुए थोड़ा ही समय बीता तो पीरल साईं ने सोढे को खून के केस में पकड़वाया।

तुरंत ही 'सालह' और शार्गिदों की जद्दोजहद के एवज में सेंट्रल जेल में कैद किया गया। उन दिनों मैं 'सालह' से मुलाकात करने सेंट्रल जेल गई थी। जेल के भीतर काफी कैदी काम कर रहे थे। कहीं-कहीं पेड़ों तले अकड़े हुए सिपाही बैठे थे। जेल का लेडीज वेटिंग रूम पूरा औरतों से भरा पड़ा था। कई औरतें सर्दी के कारण बाहर धूप में बैठी थीं। उजड़ी और वीरान...सबकी आँखों में आँसू थे। कुछ के सुहाग कैद थे तो कुछ के भाई। औरतें सभी ग्रामीण थीं। एक सुंदर जवान औरत अपनी छोटी मासूम बेटी को गोद में उठाए एक तरफ बैठी थी।

'अम्मा-आज बाबा आजाद होंगे?' बच्ची ने अपनी माँ से पूछा।

'हाँ बेटा, आज तुम्हारे बाबू की आजादी का दिन है।'

'अम्मा, बाबा हमारे साथ ईद मनाएँगे?'

'हाँ मेरी बच्ची, वह हमारे साथ मिलकर ईद मनाएगा।' और फिर वह औरत ज्यादा बर्दाश्त नहीं कर पाई। सिसककर रोने लगी।

'दीदी, आप रो क्यों रही हैं?' मैंने करीब जाते उसे गले लगाते हुए पूछा–वह सोढे की पत्नी थी, जिसे मैंने दूर से अँधेरा होने के कारण नहीं पहचाना।

वह रुआँसी आँखों से मुझे देखने लगी।

'आज पौ फटते सोढे को फाँसी दी गई है। वह ईद हमारे साथ मनाएगा।

कुल्हाड़ियों ने मेरे साथ जुल्म किया है।'

'सोढे के, नहीं, नहीं, नहीं।' मेरी चीख निकल गई। सेंट्रल जेल में मुलाकात करने आई थी, पर सोढे के बेबस केदी जिस्म को देखकर घुटन होने लगी। इस समाज के लिए मन में सख्त धिक्कार पैदा हुआ। सोढा तो बहुत सादा, समझदार, बहादुर और ईमानदार किसान था। कैसे चोरी कर सकता था? नहीं...नहीं. .. ऐसा हरगिज नहीं होगा? वह कातिल और डकैत हो ही नहीं सकता! जरूर किसी गलत इल्जाम में फँस गया होगा। मैं सोचते-सोचते घर आ पहुँची। बेदिली से किताब आकर मेज पर फेंकी।

'सालह, तुम्हें सोढा याद है?'

'कौनसा सोढा?'

'गोरी का पति और सुबहान का पिता।' जिसे गाँव के लोग 'कामरेड सोढा' पुकारा करते थे।'

'अरे हाँ...सोढा, भला उसे क्या हुआ?'

'सोढे को मैंने अपने कॉलेज में देखा। उसके पाँवों में जंजीरें जकड़ी हुई थीं। शायद सेंट्रल जेल में कैद होकर आया था।'

'हाँ सच में, उस दिन यूनिवर्सिटी में सोढे का रिश्तेदार मिला।' उसने बताया कि...सालह को...कुछ याद आया।

'एक दिन पीरल साईं की बैठक में लोग जमा थे। कुछ धरती पर तो कुछ बेंचों पर और कुछ मोड़ पर। दोस्त नेक मोहम्मद पीरल साईं के बगल में बैठा था। उसकी लाल आँखें जैसे मक्कारी और फरेब के लाल प्याले लग रही थीं। पीरल साईं भी बहुत परेशान लगे। पीरल ने नेक मोहम्मद को भेजकर 'होत' को 'बेगारी' (forced work) के लिए बुला भेजा, पर होत ने इनकार कर दिया। इसी बात पर पीरल उत्तेजित हो गया। गालियों की भरमार के बीचोंबीच 'होत' को बुलवाकर उसे थप्पड़ें लगाईं। पगड़ी उतारकर उसे बहुत बेइज्जत किया। उसी वक्त सोढा भी आकर बैठक में हाजिर हुआ। सोढे ने पास में बैठे रमू से पूछा कि माजरा क्या है? रमू ने जो सच था, वह बता दिया। पीरल साईं ने अपनी धाक जमाए रखी। बेगुनाह को गुनहगार बनाकर ही छोड़ा।

मैं मुलाकात वाले कमरे में जाकर बैठी। सामने वाली कुर्सी पर सी॰आई॰डी॰ आफिसर और जेल के प्रबंधक बैठे थे। थोड़ी देर के बाद 'सालह' मुस्कुराते हुए कमरे में दाखिल हुआ।

'जिये सिंध।' उसने कहा

'जिये सिंध।' मैंने भी हँसते हुए कहा।

'बाबा, सियासत पर बातचीत न करना।' सी॰आई॰डी॰ आफिसर ने कहा।

हम दोनों यहाँ-वहाँ की बातें करते रहे। मैंने सालह को सोढे की फाँसी के बारे में बताया। सालह की आँखें आँसुओं से तर हो गईं।

'हाँ जेल में मुझे कैदियों से खबर मिली कि चार लोगों को 'पौ फटते ही फाँसी दी गई है। पर सोढा मरा नहीं है, वह अपने पीछे एक नहीं बल्कि हजारों सोढे हर गाँव में छोड़कर गया है।'

'सालह तुम्हारा यह साल तो खराब हो जाएगा। परीक्षाएँ चल रही हैं और तुम यहाँ बैठे हो...'

'अरी पगली, लोगों की जानें बेकार हो जाती हैं। तुम सालों की बात कर रही हो। साल गया तो गया, सदके सिंधड़ी के सर, तुम चिंता मत करना।'

'नहीं, नहीं, मैं चिंता क्यों करूँगी।'

'मुलाकात का वक्त पूरा हो गया। जेलर ने हमें वक्त याद दिलाते हुए कहा।

'अच्छा, जिंदगी है तो फिर साथ हैं। जिए सिंध।'

'जिये सिंध!' और फिर मैं वहाँ से चली आई।'

लेखक-परिचय

लाल पुष्प (1935-2009)

जन्म : लाड़काणो सिंध (पाकिस्तान)। उपन्यास-7, कहानी सं॰ 11, आलोचना 3, संपादित-6, अन्य-6 पुस्तकें प्रकाशित। रोमानी धारा से उत्तर आधुनिकता के पूरे अधिकार के सर्जनशील कथाकार। पहले 'प्रहफुटी' मासिक पत्रिका के बाद में 'सिंधी इंटरनेशनल' (अँग्रेजी) के संपादक रहे। 'हुनजे आत्म जो मौत' उपन्यास पर 1974 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित। पता : 6, डनहिल, आंबेडकर रोड, खार (प॰), मुंबई 400052 (फोन 022-26461114)

ए॰जे॰ उत्तम (1923)

जन्म : हैदराबाद, सिंध (पाकिस्तान)। मूल रूप से निबंधकार, आलोचक, व कहानीकार। 'नई दुनिया' मासिक पत्रिका व 'सिंधु समाचार' के मुख्य संपादक। विभाजन की कहानियाँ (कशमकश), आलेख (साहित्य और साहित्यकार), कहानियाँ (ही जहाँ, ही मन), सिंधी समाचार व नई दुनिया का संपादन। देश-विदेश में अनेक पुरस्कार। सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार हासिल। पुस्तकों में 'कशमकश' प्रख्यात। पता : ब्लॉक 12-13 फ्लैट 2, नवजीवन कॉलनी, मोरी रोड, माहिम, मुंबई 400016 (फोन : 022-2445 6889)

मोहन कल्पना (1930-1992)

जन्म : सिंध (पाकिस्तान), करीब 250 कहानियाँ प्रकाशित। सिंध एवं हिंद के कथासाहित्य में एक अहम नाम। कहानी को एक नया मोड़ देकर एक नए क्षितिज तक लानेवाले लेखकों में से एक। कहानी के सिवा अन्य सिन्फ पर भी कलम आजमाई। कहानी संग्रह 4, उपन्यास 5, कविता संग्रह 1, समालोचना 2 एवं आत्मकथा तथा अन्य पुस्तकें प्रकाशित। कहानी में विख्यात संग्रह– 'मोही-निर्मोही', 'चाँदिनी और जहर', 'फरिश्तों की दुनिया' और 'वह शाम' हैं। उनके प्रमुख उपन्यास 'लगन' और 'विश्वास-अविश्वास'। सिंधी में भी कई पुस्तकें प्रकाशित। अ॰भा॰सि॰बो॰सा॰ सभा, मुंबई द्वारा 1983 में पुरस्कृत तथा 'वह शाम' कहानी-संग्रह पर 1984 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित।

हरि पंकज (1934)

जन्म : मारिया फकीरा, लाड़काणो, सिंध (पाकिस्तान)। 'भगल-चूड़ियूँ' कहानी-संग्रह प्रकाशित। अर्धदशक से भी पहले की प्यारी सिंधी बोली में लिखी कहानियाँ अनोखा लुत्फ देती हैं। रा॰सि॰बो॰वि॰ परिषद्, दिल्ली द्वारा पुरस्कृत। पता : 402/3, सोना अपार्टमेंट, गोल मैदान, उल्हासनगर 421001 (फोन : 0251-2547318, 9323369883)

खीमन मूलाणी (1944)

जन्म : नवाबशाह के दर्स गाँव में। 1960 से लेखनकार्य सतत जारी है। उनके प्रकाशित 4 काव्य-संग्रह, एक कहानी-संग्रह 'ओसीरो'। बालसाहित्य पर उनके दो संग्रह प्रकाशित हैं। अनुवाद के क्षेत्र में आप एक सिद्धस्त हस्ताक्षर हैं। 9 पुस्तकों का हिंदी से सिंधी में अनुवाद। रवींद्रनाथ टैगोर की 'गीतांजली', नॉवल 'जल तू जलाल तू, और डॉ॰ अंबेडकर का सिंधी अनुवाद विशेष हैं। सिंधी के अनेक संग्रह हिंदी में अनुवाद किए हैं, जिनमें 'स्वामी के श्लोक' चर्चित है। देश के जाने-माने हस्ताक्षर लेखकों के कहानी-संग्रह व उपन्यास अनुवाद किए हैं, कुछ प्रेस में हैं। राष्ट्रीय सिंधी विकास परिषद् की ओर से-'उडुर-उडुर रे पोपटड़ा' के लिए 1992 में पुरस्कार प्राप्त, फिर मुसलसल 1995, 2004, 2010 में केंद्रीय साहित्य अकादेमी के ओर से 'सुहिणा गुलड़ा बार' के लिए पुरस्कार। पता : 14/134 बैरागढ़, भोपाल 462030, मो॰ 09827343735

डॉ॰ जेठो लालवाणी (1945)

जन्म : कंडियारो, नवाबशाह, सिंध (पाकिस्तान)। 25 पुस्तकों का प्रकाशन, कहानियाँ, लेख, आलेख, अखिल भारत सिंधी बोली, गुजरात साहित्य अकादमी की ओर से पुरस्कृत व सम्मानित। पता : 37 आदित्य बंगलोज, आवास पार्क के भीतर, नोबिल नगर के पास, अहमदाबाद 382340

इंद्रा वासवाणी (1936-2012)

जन्म : मीरपुर खास, सिंध (पाकिस्तान)। तीन कहानी संग्रह प्रकाशित। वर्षों से अच्छी कविताएँ भी प्रकाशित हो रही हैं। बहुत ही निकट परिवेश के पात्र इनकी कहानी में सजीव अनुभूतियाँ बुनते हैं। नवें दशक में लेखन करके,

संवेदनशील 'सहज' कहानी में, 'बदलाव' को अंकित करती लगातार सक्रिय। 'बेस्ट-टीचर' के तौर पर राष्ट्रपति से सम्मानित। गुजरात सिंधी साहित्य अकादमी के गौरव पुरस्कार–2004 एवं अ॰भा॰सि॰बो॰सा॰ सभा, जयपुर 2008 द्वारा भी सम्मानित। पताः टी॰एच॰एक्स॰ 23, आदीपुर 370205 (कच्छ) (फोन : 02836-260629)

नारायण भारती (1 अक्टूबर 1932)

जन्म : कंभर, सिंध (पाकिस्तान), 'होजमालों' लोकगीत का एक दस्तावेजी संग्रह, जिस पर अखिल भारतीय सिंधी बोली साहित्य सभा की ओर से पुरस्कार व सम्मान हासिल है। साहित्यिक पत्रिका 'सिंधी टाइम्स' के संपादक हैं। पता : हीरा को॰ओप॰ सोसाइटी, फ्लॅट G/56 3-फ्लोर, उलहासनगर 421003 मो॰ 09890730334

जगदीश (1924)

जन्म : ताशकंद जुबेकिस्तान में हुआ, बचपन वहीं बीता। पढ़ाई यू॰ के॰ में संपन्न की और वहीं कई वर्षों तक युनिवर्सिटी में चान्सलर के तौर स्थापित रहे। आपने वतन के, अपने इलाके में हो रही नाइंसाफियों को उन्होंने उर्दू भाषा में जबान दी। अनेक संस्थाओं से सम्मानित अपनी अभिव्यक्त कहानी किस्सों को 3 संग्रहों में समाहित कर गए। हर कहानी में जन-मानस की कथा व्यथा दर्ज है। यही उनकी असली पहचान है।

सुगुन अहूजा (1921-1966)

जन्म : सखर, सिंध (पाकिस्तान)। कविता और कहानी के बीच करवटें बदलने वाले लेखक, मनोविश्लेषण पर विशेष बल देते रहे। उनका कहानी-संग्रह 'ऐश की कीमत' और 'बे-आग जलते हैं परवाने' प्रख्यात हैं। उनकी कहानी 'पड़ोसन' को आपकी सर्वोतम कहानी मानते हैं। रवायत में रहकर रवायत से अलग अपने फन और शख्सियत की पहचान कायम रखनेवाले लेखक। लघुकथा, काव्य, आलेखों के संग्रह, रूप-माया, नारायण की कविताओं का समीक्षात्मक मूल्यांकन, कॉलेज में प्राचार्य पद से रिटायर। उनका उपन्यास 'कँवल जाग उठा' 1968 में उनकी मृत्यु के पश्चात् छपा।

अर्जुन चावला (10 फरवरी 1931)

जन्म : काशमोर, (सिंध), शिक्षा : (अँग्रेजी साहित्य), बी॰एड॰, डी॰एस॰, 4 काव्य-संग्रह, एक मजमून पर। CHD से 'चारण चोरियो चंग', NCPSL से 'उभरया अक्स हजार' पर पुरस्कृत, विभिन्न संस्थाओं द्वारा सम्मानित। के॰आर॰ राजकीय गर्ल्स कॉलेज, ग्वालियर के प्राध्यापक रहे। कई संस्थाओं से सन्म्मानित। पता: 6/198, स्ट्रीट नं॰ 1, नई बस्ती, अलीगढ़ 202001 (उ॰प्र॰); मो॰ 9759500081

अनवर शेख (12 सितंबर 1969)

जन्म : शिकारपुर (सिंध); पढ़ाई शिकारपुर में की और वहीं डिग्री कॉलेज से ग्रेजुएशन किया। कई कहानी-पत्रिकाओं में छपते हैं। एक कहानी-संग्रह 'दर्द का अंगास' नाम से प्रकाशित हुआ है। एक उपन्यास 'अणसुजातल' मांजरे-आम पर अपनी पहचान पा चुका है। वे पुलिस डिपार्टमेंट में इंसपेक्टर के पद पर कार्यरत हैं और देश व जनता को ध्यान में रखते हुए अपने कर्तव्य का पालन कर रहे हैं। पता : रुस्तुम रोड, शिकारपुर, सिंध (पाकिस्तान)

डॉ॰ हिदायत प्रेम (24 मार्च 1946)

जन्म : घोटका, जिला-सिंध में। 1973 में सिंध यूनिवर्सिटी जामशोरो में सिंधी में एम॰ए॰ किया। 1989 में लंदन से लसानियत में डिप्लोमा और 1995 में सिंध यूनिवर्सिटी, जामशोरो से पीएच॰डी॰ की उपाधि प्राप्त की। इस वक्त सिंध यूनिवर्सिटी में सिंधी पढ़ाते हैं। उन्होंने अनेक कहानियाँ और शोधपरक लेख लिखे हैं। पता : सी-25, सिंध यूनिवर्सिटी कॉलोनी, जामशोरो (सिंध)

शौकत हुसैन शोरो (4 जुलाई 1947)

जन्म : तालुका सजावल, जिला ठट्टो में। सचल सरमस्त आट्र्स कॉलेज से बी॰ए॰ और सिंध यूनिवर्सिटी से एम॰ए॰ किया। अपनी कार्ययात्रा का प्रारंभ सिंधी अदबी बोर्ड, जामशोरो से प्रकाशित रसाले 'गुल-फुल' के संपादक के रूप में किया। बाद में पाकिस्तान टी॰वी॰ सेंटर, कराची में सहायक निर्माता रहे। इस समय सिंध यूनिवर्सिटी जामशोरो में छात्र पाठ्य सहगामी क्रियाओं के निदेशक के पद पर कार्यरत हैं। उनकी कहानियों के संग्रह 'गूँगी धरती, बहरा आकाश'

और 'आँखों में टँगे सपने', 'रात का रंग' सिंधी में और 'गुम हुई परछाई' हिंदी में प्रकाशित हैं। 'हारा हुआ आदमी' उनका सिंधी से हिंदी में अनूदित कहानी-संग्रह है। सिंधी व उर्दू में कई नाटकों का प्रसारण हो चुका है। उनमें खास हैं—दौलत, बाख, धुब्बण एवं सुनीति वगैरह। मई 14, 2015 'अखिल भारत सिंधी बोली और साहित्य सभा' की ओर से उन्हें मुंबई में 'सिंधी अदीब अवार्ड' प्राप्त हुआ। संपर्क : सिंध यूनिवर्सिटी जामशोरो की कालोनी में आवास।

नसीम थेबो (1 अप्रैल 1948)

जन्म : मेहम दादू में। पढ़ाई की शुरुआत शिकारपुर में हुई। सिंध यूनिवर्सिटी जामशोरो में असिस्टेंट प्रोफेसर के स्थान पर कार्यरत। 1968 से लिखना शुरू किया। उनकी पहली कहानी 'आँसुओं की रेखा' थी और भी अनेक कहानियाँ अलग-अलग वर्षों में छप चुकी हैं।

देवी नागरानी

जन्म : 11 मई, 1941, कराची (तब भारत)
माता-पिता का नाम–किशिनचंद ललवाणी एवं हरीबाई लालवाणी
शिक्षा : बी॰ए॰ व गणित में विशेष डिग्री, न्यूजर्सी से।
मातृभाषा : सिंधी, भाषाज्ञान : हिंदी, सिंधी, गुरमुखी, उर्दू, तेलुगु, मराठी, अँग्रेजी
संप्रति : शिक्षिका, न्यू जर्सी॰ यू॰एस॰ए॰ (सेवानिवृत)
प्रकाशित सिंधी संग्रह–
गम में भीगी खुशी (गजल 2007), उड़ जा पंछी (भजनावली 2007), आस की शम्अ (गजल 2008), सिंध जी आऊँ जाई आह्याँ (2009), गजल (2012), माँ कहिं जो बि नाहियाँ (कहानी 2016), गुलशन कौर (कहानी) किताबी समालोचनाएँ।
हिंदी-संग्रह–चरागे-दिल (गजल 2007), दिल से दिल तक (गजल 2008), लौ दर्दे-दिल की (गजल 2008), भजन-महिमा (भजनावली 2012), ऐसा भी होता है (कहानी 2016), सहन-ए-दिल (गजल 2017), गंगा निरंतर बहती रही (लघुकथा 2017), कविता की पगडंडियाँ (काव्य 2017), माँ ने कहा था (काव्य 2017), The Journey (अँग्रेजी काव्य 2009)
अनुवाद–
हिंदी से सिंधी अनुवाद–बारिश की दुआ (कहानी संग्रह 2012), अपनी धरती (कहानी संग्रह 2013), रूहानी राह जा पांधीअड़ा (काव्य 2014), बर्फ जी गरमाइश (लघुकथा 2014), आमने-सामने (हिंदी-सिंधी काव्य अनुवाद 2016) आँख ये धन्य है (नरेंद्र मोदी काव्य 2017), चौथी कूट (वरियम कारा का कहानी-संग्रह, प्रकाशन-साहित्य अकादमी)
सिंधी से हिंदी अनुवाद–और मैं बड़ी हो गई (कहानी 2012), पंद्रह सिंधी कहानियाँ (कहानी 2014), सिंधी कहानियाँ (कहानी 2014), सरहदों की कहानियाँ (कहानी 2015), अपने ही घर में (कहानी 2016), दर्द की एक गाथा (कहानी 2016), एक थका हुआ सच (अतिया दाऊद काव्य 2016), विभाजन की त्रासदी (विभाजन की कहानियाँ 2017), काव्य की पगाडंडियाँ (काव्य 2017), अहसास के दरीचे (प्रांतीय-विदेशी कहानियाँ), रूमी- मसनवी (अँग्रेजी से हिंदी)

अन्य अनुवाद–सफर (अँग्रेजी काव्य का हिंदी सिंधी अनुवाद, (धुरु तनवाणी 2016), सिंधी कथा (सिंधी कहानी का मराठी अनुवाद-डॉ॰ विध्या केशव चिट्को 2016), कई कहानियाँ तेलुगु, तमिल, पंजाबी एवं अँग्रेजी में अनुवाद।

सम्मान-पुरस्कार–अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति, शिक्षायतन व विध्याधाम संस्था NY- काव्यरत्न सम्मान, काव्यमणि-सम्मान-'Proclamation Honor Award-Mayor of NJ, सृजनश्री सम्मान, रायपुर-2008, काव्योत्सव सम्मान, मुंबई-2008, सर्व भारतीय भाषा सम्मेलन में सम्मान, मुंबई-2008, राष्ट्रीय सिंधी भाषा विकास परिषद्-पुरस्कार-2009, 'खुशदिलान-ए-जोधपुर' सम्मान-2010, हिंदी साहित्यसेवी सम्मान-भारतीय-नार्वेजीयन सूचना एवं सांस्कृतिक फोरम, ओस्लो-2011, मध्यप्रदेश तुलसी साहित्य अकादेमी सम्मान-2011, जीवन ज्योति पुरस्कार, गणतंत्र दिवस-मुंबई-2012, साहित्य सेतु सम्मान-तमिलनाडु हिंदी अकादमी-2013, सैय्यद अमीर अली मीर पुरस्कार-मध्य-प्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति-2013, डॉ॰ अमृता प्रीतम लिट्रेरी नेशनल अवार्ड, नागपुर-2014, साहित्य शिरोमणि सम्मान-कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़-2014, विश्व हिंदी सेवा सम्मान-अखिल भारतीय मंचीय कवि पीठ, उ॰प्र॰ 2014, भाषांतर शिल्पी सारस्वत सम्मान-भारतीय वाङ्मय पीठ-कोलकता-जनवरी 2015, हिंदीसेवी सम्मान-अस्माबी कॉलेज, त्रिशूर-केरल-सितंबर 2015, हिंदी गौरव सम्मान-साठे कॉलेज, मुंबई-मार्च 2017, 'प्रवासी साहित्यकार सम्मान' विश्वभाषा साहित्य और रामकथा-अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी पं॰ दीनदयाल विश्वविद्यालय, सागर (म॰प॰ 2017)

Devi Nangrani
323 Harmon cove towers
Secaucus, NJ 07094
dnangrani@gmail.com